श्रीशङ्कराचार्य-प्रणीत

सौन्दर्यलहरी

मूल, हिन्दी अनुवाद एवं चित्र सहित

डॉ० श्रीमती विनोद अग्रवाल
(सीनियर प्राध्यापिका संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय)

पुरोवाक्

डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली (भारत)

SAUNDARYALAHARĪ

(The Ocean of Divine Beauty)
of
ŚAṄKARĀCĀRYA
Sanskrit Text in Devanāgarī with Hindi Translation, Explanatory Notes, Yantric Diagrams and Index

DR. MRS VINOD AGGARWAL
(Sanskrit Department, University of Delhi)

FOREWORD BY
PROF B M CHATURVEDI
Sanskrit Deptt., Delhi University

Eastern Book Linkers
DELHI :: (INDIA)

पूजनीया माता जी
श्रीमती कान्ता रानी
एवं
पूजनीय पिता जी
श्री जुगल किशोर
के प्रति
सादर समर्पित

पुरोवाक्

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो.

डा० श्रीमती विनोद अग्रवाल के द्वारा कृत सौन्दर्यलहरी की विस्तृत व्याख्या से विद्वानो एव जिज्ञासुओ को परिचित कराने के लिए इन पंक्तियों को लिखने में मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है क्योकि इस व्याख्या में इन्होंने रचना के मर्म को उद्घाटित करने का श्लाघ्य प्रयास किया है।

[सौन्दर्यलहरी आचार्य शङ्कर की विलक्षण कृति है जो स्तोत्र काव्य के गुणो से तो समलकृत है ही तन्त्र और दर्शन का भी अनूठा ग्रन्थ है। इसमे भगवती जगदम्बा का आद्याशक्ति तथा उससे भी बढकर साक्षात् चितिशक्ति के रूप में निरूपण हुआ है। वेदान्त की दृष्टि से वही शक्ति कारण ब्रह्म है तथा प्रकृति की राजस, सात्त्विक एव तामस रूपी कारयित्री पालयित्री एव नाशयित्री शक्तियो से सवलित ब्रह्मा विष्णु एव महेश के रूप मे कार्यब्रह्म है। सौन्दर्यलहरी मुख्यत कलात्मक रचना है। इसमे भगवती जगदम्बा के अनिन्द्य सौन्दर्य का नखशिख चित्रण करते हुए उनके प्रति भक्ति भावना की बडी ही पुष्कल अभिव्यक्ति हुई है। आचार्य की काव्य प्रतिभा का स्फुरण यहाँ चरमोत्कर्ष पर है। भरतमुनि की उक्ति का कि लोक मे जो भी मेध्य, पवित्र, उज्ज्वल एव दर्शनीय है उसका उपमान शृङ्गार है, जितना उपयुक्त निदर्शन भगवती की रूपराशि के वर्णन मे यहाँ उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र किसी भी महाकवि की रचना मे कथमपि नहीं होता। अतएव इस कृति को सस्कृति गीति का शिखर बिन्दु माना गया है।]

श्रीमती अग्रवाल की व्याख्या को पढकर लगता है कि वह बौद्धिक व्यायाम न होकर गुरुपरम्परा से प्राप्त बोध का परिणाम है जो इनके सात्त्विक अन्त करण की प्राञ्जल अभिव्यक्ति है। इनका पारिवारिक जीवन परम सात्त्विक एवं सुसंस्कृत है। आध्यात्मिक चिन्तनधारा को जीवन में उतारने का इन्होने अभिनन्दनीय प्रयास किया है तथा इसमे पर्याप्त मात्रा मे सफलता भी मिली है। सौन्दर्यलहरी की इनकी इस व्याख्या मे ज्ञान के साथ-साथ इनका जीवन भी उतरा है जो इनकी साधना का फल है।

व्याख्या सरल एवं सुबोध शैली में है जिसमें भाव सहज रूप में स्वतः आते जाते हैं। गूढ़स्थलों को खोलकर स्पष्ट करने में ये दक्ष हैं तथा अपनी बात को युक्ति, तर्क एवं उद्धरणों से पुष्ट करना भी ये जानती हैं। मेरा विश्वास है कि श्रीमती अग्रवाल की यह व्याख्या जिज्ञासुओं को तृप्ति प्रदान करते हुए जन मन में व्यापक रूप से स्थान ग्रहण करेगी। इन शब्दों के साथ ही मैं यह भी कामना करता हूँ कि ये इसी प्रकार विद्या व्यसन के साथ ही साथ साहित्य-सृजन में भी निरन्तर लगी रहें और अनेक उत्तमोत्तम कृतियों की रचना कर यशस्विनी हों।

श्रीपञ्चमी २०४१

व्रजमोहन चतुर्वेदी
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विषय

प० सं० पद्य यन्त्र लाभ (Benefits)

५७. भगवती की कृपादृष्टि—सर्वोदय प्राप्ति—Attainment of prosperity

५८. कनपटियों का ध्यान—सम्मोहनशक्ति, रोगनिवारण—Attraction and freedom from diseases

५९. मुख का ध्यान—आकर्षण शक्ति—Power of attraction

६०. कुण्डलिनी द्वारा 'ॐ' का उच्चारण मानों अनुज्ञा का सूचक—सर्वज्ञान—Omniscience

६१. नासिका का ध्यान—कार्य में सफलता—Success in undertakings

६२. ओष्ठों का ध्यान—सुखनिद्रा—Sound sleep

६३. मुस्कान का ध्यान—वशीकरण—Power of attraction

६४. जिह्वा का ध्यान—वशीकरण—Power of attraction

६५. भगवती का वात्सल्य भाव—विजय—Victory

६६. वाणी की प्रशंसा—संगीत निपुणता—Skill in music

६७. चिबुक का ध्यान—दाम्पत्य प्रेम—Mutual affection

६८. ग्रीवा का ध्यान—राजसम्मोहन—Subjugation of rulers

६९. गले का ध्यान—कार्य सफलता—Success in all undertakings

७०. चार भुजाओं का ध्यान—विजय—Power of attraction

७१. हाथों का ध्यान—सम्मोहन शक्ति—Subjugation of female friends

७२. दोनों कुम्भवत् स्तनों का ध्यान—स्तनदुग्धवृद्धि—Increase of milk in mothers

७३. स्तनों का पान करने से भी गणेश और स्कन्द नित्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्तनदुग्धवृद्धि—Increase of milk in mothers

७४. मुक्तामणियों की माला से शोभायमान कुचभाग—*Fame*

७५. स्तनों के दूध का पारावार सारस्वत ज्ञान के सदृश—काव्यात्मक दक्षता—Poetic skill

७६. नाभि का ध्यान—आकर्षण शक्ति एवं विजय—Attraction and success in all undertakings

७७. सर्पिणी की तरह नाभि—व्यवसाय वृद्धि—Increase of business

७८. नाभि-गङ्गा का स्थिर भँवर, आवाल (गमला) हवनकुण्ड, क्रीड़ास्थल गुफा का द्वार—कार्यसफलता—*Success in undertakings*

प० स० पद्य यन्त्र लाभ (Benefits)

७९ नाभि-तट व वक्ष के सन्त—मोहन शक्ति—Hypnotic powers
८० लवली वल्लि की वलियो स तीन बार बँधा कटिप्रदेश—एन्द्रजालिक शक्ति—Magical powers
८१ नितम्ब का ध्यान—आग पर काबू पाना—Control over fire
८२ ऊरुयुग्म का ध्यान—जल पर काबू पाना Control over water
८३ जङ्घाओ का ध्यान—हाथी घोडा सना पर काबू पाना—Control over elephants horses and army
८४ चरणा का ध्यान—भगवान् की शक्ति पर देह प्रवश शक्ति—Power to enter other bodies
८५ चरणो का ध्यान—भूतपिशाच भगाने का शक्ति—Power to drive off evil spirits
८६ चरणा का ध्यान—अशुभ आपत्तियो का निवारण
८७ चरणो का ध्यान—सर्पो पर काबू पाना—Control over serpents
८८ —पशुओ पर काबू पाना—Control over animals
८९ —रोग मुक्ति—Prevention of diseases
९० —घणित कार्यों का विरोध—Power to with stand evil
९१ चरणा की गति का ध्यान—सम्पत्ति का लाभ—Acquisition of property
९२ पलङ्ग का ध्यान राज्याधिकार—Acquisition of kingdom
९३ पूरे शरीर का ध्यान—इच्छापूर्ति—Fulfilment of desires
९४ शृङ्गार के डिब्ब का ध्यान—पार्थिव वस्तु की प्राप्ति—Attainment of material objects
९५ भगवती की सपर्या की असुलभता—घावो का भरन की शक्ति—Healing of wounds
९६ —कला ज्ञान—Skill in arts
९७ —बल प्राप्ति—Acquisition of strength
९८ प्रार्थना—यौनसम्बन्धा प्रसन्नता—Sexual enjoyment
९९ प्रार्थना—वीरता प्राप्ति—Acquisition of heroic power
१०० समर्पण—सभी आदर्शों की प्राप्ति—Attainment of all aims

अवतरणिका

सौन्दर्यलहरी श्रीभगवत्पाद आद्य शङ्कराचार्य द्वारा रचित एक प्रासादिक स्तोत्र है। इस स्तोत्र के प्रथम ४१ श्लोकों का पूर्वार्द्ध आनन्दलहरी और पूरा स्तोत्र सौन्दर्यलहरी के नाम से विख्यात है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में उपासना का गूढ़ रहस्य और योग-साधनों की उपयोगिता बतलायी गई है। श्रीविद्या की महिमा, उपासना की विधि, मन्त्र, श्रीचक्र और षट्चक्रों से इसका सम्बन्ध षट्चक्रों का वेध और एवं तत्सम्बन्धी दार्शनिक विचारों पर गूढ़ प्रकाश डाला गया है। श्री जगज्जननी आदिशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी के प्रकाश से यह सकल चर-अचर प्रकाशमान है। दिव्यमयी माँ की इस स्तुति से साधक शिशुओं के हृदय में अपार शान्ति एवं अपूर्व तेज और ओज का दिव्य समावेश होता है।

सौन्दर्यलहरी के ११वें श्लोक में श्रीचक्र का वर्णन है। श्रीचक्र की उपासना एक बड़े महत्व का साधन है। श्रीचक्र रेखागणित के प्रमाण से देवी शक्तियों का एक प्रतीक स्वरूप यन्त्र बनाया गया है। भौतिक यन्त्रों के सदृश यह भी अध्यात्म विज्ञान के विद्वानों की आध्यात्मिक खोज का फल है जिसके द्वारा अध्यात्मशक्ति की उपलब्धि होती है। इस चक्र की उपास्य देवता श्रीललिता त्रिपुराम्बा हैं।

प्रत्येक उपासना के बहिः और अन्तरङ्ग दो भेद होते हैं। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण होने तक ही बहिःपूजा की उपयोगिता होती है। तत्पश्चात् अन्तः साधन का प्रारम्भ होता है। श्रीविद्या की बहिरुपासना श्रीचक्र पर की जाती है और अन्तरुपासना के लिए देह में ही श्रीचक्र की भावना करने का विधान है।

देह में सुषुम्नापथ द्वारा कुण्डलिनी का उसके जागरणोपरान्त आरोह-अवरोह होने लगता है। श्रीचक्र पर अन्तर्भावना-युक्त बहिरुपासना करने से शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है। श्रीचक्र का अर्चन-पूजन सब उपासना का कर्मकाण्ड रूपी स्थूल अङ्ग है और शक्ति जागरण के पश्चात् षट्चक्रवेध की क्रियाओं का योगपरक साधन, धारणा, ध्यान, समाधि के

अन्तरङ्ग साधनों युक्त उसका सूक्ष्म अङ्ग है। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से ही कारण तक पहुँचा जाता है।

वैष्णवों के वृन्दावन की श्री राधारानी, राम के मन्दिरों में सीता माता, शैवों की उपासना में उमा और शाक्तों में दुर्गा-काली शक्ति उपासना की प्रथम प्रधानता के द्योतक है। शङ्कर भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी में जगज्जननी उमा-पार्वती के बहाने शक्ति उपासना की जो श्रीविद्या के नाम से प्रसिद्ध है, विस्तृत व्याख्या की है। श्री विद्या की उपासना पद्धति योगियों में श्रीरूपा कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए गुरु की शक्तिपात दीक्षा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। पृश्नी नामक ऋषियों ने भी श्रीचक्र के अर्चन द्वारा ही कुण्डलिनी शक्ति का मूलाधार से सहस्रार में उत्थान करके योग सिद्धि प्राप्त की थी।

केनोपनिषद् की बहुशोभमाना उमा हेमवती पुराणों की उमा हिमालय पुत्री पार्वती के मानुषी रूप को सामने रखते हुए भी उस सृष्टि की आदिशक्ति योगियों की षट्चक्राधिष्ठात्री कुण्डलिनी शक्ति तान्त्रिक की श्रीचक्रस्य श्रीविद्या की अधिदेवता त्रिपुरसुन्दरी और सकल ब्रह्माण्ड में स्थूलरूप से स्वयं व्यक्त होने वाली विराट अधिभूता शक्ति का, निर्गुण ब्रह्म की सत् चित् आनन्द से अभिव्यक्त होने वाली चिति अर्थात् चिन्मयी शक्ति के साथ समन्वय करके अद्वैतवाद का ही प्रतिपादन इस स्तोत्र में किया गया है और अद्वैत ब्रह्मात्मैक्य अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति का ही मार्ग है।

श्री अच्युतानन्द, पण्डित अनन्तकृष्ण शास्त्री, लक्ष्मीधर, कैवल्यशर्मा सुब्रह्मण्य शास्त्री, श्री निवास आयङ्गर, सर जान वुड्रफ और विशेष रूप से स्वामी विष्णुतीर्थ जी की टीकाओं की सहायता से ही मैं इस पुस्तक को लिखने में समर्थ हुई हूं। इस ग्रन्थ का अनुवाद स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार ही है। सभी विद्वानों का विनम्र साधुवाद करती हूँ।

पूज्य गुरु डा० ब्रजमोहन चतुर्वेदी प्रोफेसर संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की सतत प्रेरणा अनन्य निष्ठा, उत्साहमयी एवं ओजमयी वाणी के अनुग्रह के कारण ही मैं इस पुस्तक की व्याख्या करने में समर्थ हो सकी। पूज्य गुरु का किन शब्दों में धन्यवाद करूँ मैं इसके लिए अक्षम हूँ।

मैं अपनी पूज्या ममतामयी माता जी श्रीमती बचन देवी और अपने पति श्री वी एन अग्रवाल के प्रति भी अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने मुझे सतत अपने पथ की ओर निरन्तर प्रेरित एवं उत्साहित किया। आज मैं जो कुछ भी हूँ उन्हीं के आशीर्वाद का परिणाम है। उनका अपूर्व सहयोग यदि मुझे जीवन

में न मिलता तो सम्भवतः मैं कुछ भी न कर पाती। मैं सच्चिदानन्दमयी माँ से प्रार्थना करती हूँ कि भविष्य में भी वे निरन्तर मुझे प्रकाश स्तम्भ की तरह आलोक देते रहें।

श्री श्यामलाल मल्होत्रा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स के मालिक की भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस कार्य के प्रकाशन एवं मुद्रण का भार लेकर मुझे चिन्ता-विनिर्मुक्त किया है।

१ मार्च १९८५

डॉ० श्रीमती विनोद अग्रवाल
सीनियर प्राध्यापिका, विवेकानन्द महिला कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सौन्दर्यलहरी

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥१॥

पदयोजना—*[हे भगवति !] शिवो देवः शक्त्या युक्तो भवति यदि, [तदा] प्रभवितुं शक्तः । एवं न चेत्, स्पन्दितुमपि कुशलो न खलु । अतः हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि आराध्यां त्वाम् अकृतपुण्यः प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथं प्रभवति ।*

अर्थ—यदि शिव शक्ति से युक्त होकर ही सृष्टि करने को शक्तिमान् होता है और यदि ऐसा न होता तो वह ईश्वर स्पन्दित होने को भी योग्य नहीं था इसलिए मुझ हरिहर और ब्रह्मा आदि से भी आराध्य देवी को प्रणाम करने अथवा स्तुति करने की सामर्थ्य किसी भी पुण्यहीन मनुष्य में कैसे हो सकती है ?

व्याख्या—*शिव हं वाच्य है और शक्ति सः वाच्य । इसलिए इस श्लोक से हंसः मन्त्र सिद्ध होता है जिसको उलटा करने से सोऽहं बनता है । सोऽहं में से स और ह दोनों अक्षरों को हटा दिया जाए तो ॐ शेष रह जाता है । ॐ निर्गुण अक्षर ब्रह्मवाचक है, हंसः जीववाचक और सोऽहं ब्रह्मात्मैक्य पद है । ह और स दोनों के योग से ह्सौ बीजमन्त्र भी बनता है जिसको प्रेत बीज कहते हैं । इस बीज में शिव शक्ति दोनों को प्रलयकालीन महासुप्ति अवस्था में दिखाया गया है । प्रत्येक श्वास में प्राणिमात्र का हंसः अथवा* सोऽहं जप होता रहता है—

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥

शिव शक्ति से युक्त होकर प्रभव करता है।

"नहि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिद्ध्यति।"

(शङ्कर भाष्य, ब्र० सू० १,४,३)

और भी—

"चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः॥"

वामकेश्वरमहातन्त्र में भी कहा है—

"परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तश्शक्त एव हि॥"

और भी—

"न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि"

और भी—

"परोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन।
शक्तः स्यात्परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेद्यदि॥"

वास्तव में शिव और शक्ति एक ही है। उपासक वासनाभेद होने से शिव और शक्ति की पृथक्-पृथक् कल्पना करते हैं।

"शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्त्यपरमार्थतः।
अभेदमनुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥"

—कूर्मपुराण

"आश्लेष्यविशेष इव गजवृषभयोर्द्वयोः प्रतिभासम्।
एकस्मिन्नेवार्थे शिवशक्तिविभागकल्पनां कुर्मः॥"

—परिमल

परन्तु इसी श्लोक की दूसरी पंक्ति में कहा है कि शिव शक्ति से युक्त न हो तो वह स्पन्दित भी नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि शक्ति से युक्त ब्रह्म स्पन्दित होता है।

तदेजति तन्नेजति (ईशावास्योपनिषद्)

गुरु को शिव स्वरूप समझना चाहिए। जब गुरु शक्ति से युक्त होता है, तभी वह दीक्षा देकर शिष्य की प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सकता है, अन्यथा नहीं।

"आदि" शब्द से अभिप्राय मनुचन्द्रादि से है।

विष्णु शिव सुरज्येष्ठो मनुश्चन्द्रो धनाधिप ।
लोपामुद्रा तथाऽगस्त्य स्कन्द कुसुमसायक ॥
सुराधीशो रौहिणेयो दत्तात्रेयो महामुनि ।
दुर्वासा इति विख्याता एते मुख्या उपासका ॥

ज्ञानार्णव मे भी कहा है—

"मनुश्चन्द्र कुबेरश्च मन्मथस्तदनन्तरम् ।
लोपामुद्रा तथागस्त्य स्कन्दो विष्णुस्तथा शिव ॥
दत्तात्रेयो मुनि शक्रो दुर्वासाश्च त्रयोदश ।
उपासते महाविद्या द्वादशोक्तास्तवानघे ।
त्रयोदशाक्षरी विद्या दुर्वासोपासिता [प्रिये ॥

पूर्व जन्मो की अर्जित सुकृत राशि से ही मनुष्य देवी की स्तुति करने मे समर्थ हो सकता है अन्यथा नही।

पूर्वजन्मकृतै पुण्यैर्ज्ञात्वेमा परदेवताम् ।
पूजयेदागमोक्तेन विधानेन 'समाहित ॥

हरिहर और विरिञ्चि भी शक्ति की कृपा से ही वर प्रदान कर सकते हैं। इसलिए शक्ति ही फलदायिनी है।

"येऽपि ब्रह्मादयो देवा भवन्ति वरदायिन ।
त्वद्रूपा शक्तिमासाद्य ते भवन्ति वरप्रदा ।
तस्मात्वमेव सर्वत्र कर्मणा फलदायिनी ॥"

—मानसोल्लास

अर्थात् वह स्पन्दित होता है और वह स्पन्दित नही होता। प्रश्न यह है कि स्पन्द शक्ति का धर्म है या शिव का अथवा दोनो का। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार स्वभाव से निष्क्रिय, शान्त पद मे स्पन्द का सर्वथा अभाव है। शक्ति युक्त होकर भी उसका स्वभाव नही बदल सकता। शक्ति त्रिगुणात्मिका है। उसका स्वभाव सक्रिय है। इसलिए इच्छा, ज्ञान और क्रिया मे भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। इसलिए स्पन्द शक्ति मे ही हो सकता है। शिव मे नही। शिव अहभाव है। शक्ति इद का भाव है। शक्ति स्वय शक्तिमान् है। इद का भाव अह की ही एक वृत्ति है। अह के विना इद

की सत्ता नहीं। परन्तु अहं का उदय निरपेक्ष आत्मा से ही है। अहं के अभाव में उस आत्मतत्त्व का अभाव नहीं होता। वह सुषुप्ति या समाधि के समय भी रहता है। अहं और इदं दोनों के प्रभाव से ही सृष्टि की अभिव्यक्ति है जिसको स्पन्द कहा जाता है चाहे वह समष्टि में हो या व्यष्टि में—दोनों एक समान हैं। सृष्टि की रचना ब्रह्मा (विरिञ्चि) करते हैं और शिव (हर) संहार करते हैं। परन्तु यहाँ सृष्टि की उत्पत्ति शिव जी से है। अतः यहां शिव या हर शब्द को परमशिव अर्थात् ब्रह्मवाचक समझना चाहिए। कारण दो प्रकार का होता है—निमित्त और उपादान। कोई जड़ शक्ति जगत् का उपादान कारण है। ईश्वर जगत् का निमित्त कारण होना चाहिए जो चेतन है। परन्तु दार्शनिक दृष्टि से शङ्कर भगवत्पाद के अद्वैत मतानुसार ब्रह्म ही उसका अभिन्न और निमित्तोपादान कारण है। कुम्हार भी वही है और स्वयं मिट्टी भी।

व्याकरणसम्बन्धी टिप्पणियाँ—

शिव—शिव सर्वमङ्गलोपेत है। सर्वमङ्गलकारी

(१) शिवशब्द वश कान्तौ इस धातु से निष्पन्न हुआ है। यथा—

हिंसिधातोस्सिंहशब्दो वशकान्तौ शिवस्मृतः।
वर्णव्यत्ययतत्सिद्धौ पश्यकः कश्यपो यथा॥

यह धातु तुदादिगण और अदादिगण में संगृहीत है। तुदादिगण में वशतेः दीप्ति यह अर्थ है। कान्ति दीप्ति है। अदादिगण में वश कामना अर्थ है। इच्छा शक्ति से आश्रयत्व के कारण ईश्वर का शिवत्व है। (इच्छा-शक्त्याश्रयत्वात् ईश्वरस्य शिवत्वम्)।

वशति प्रकाशते स्वयं प्रकाश इति,
यद्वा स्वस्मिन् प्रपञ्चं प्रकाशयतीति शिवः।

(२) शीङ् स्वप्ने इस धातु से शिवशब्द की उत्पत्ति हुई है। स्वप्नं वाति क्षिपतीति शिवः अतः शिव, जाड्यरहित और अविद्यानिर्मुक्त है।

(३) अथवा स्वप्नम् अविद्यां वाति गच्छतीति शिवः।

हरिहरविरिञ्च्यादिभिः—

हरिः—विष्णु
हरः—रुद्रः
विरिञ्चिः—ब्रह्मा

हरश्च विरिञ्चिश्चादिश्च ते —हरविरिञ्च्यादय —द्वन्द्व समास

स्पन्दितुम्—स्पदि किञ्चिच्चलने—ज्ञातुमपि, ईषितुमपि, कर्तुमपि इति अर्थत्रय लभ्यते

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं
विरिञ्चि. सञ्चिन्वन्विरचयति लोकानविकलम् ।
वहत्येनं शौरि कथमपि सहस्रेण शिरसां
हरः संक्षुद्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥२॥

पदयोजना—[हे भगवति] विरिञ्चि तव चरणपङ्केरुहभव तनीयाम पासु सञ्चिन्वन् लोकान् अविकल विरचयति । [हे भगवति] शौरिरेन शिरसा सहस्रेण कथमपि वहति । [हे भगवति] एन सक्षुद्य हर भसितोद्धूलनविधि भजति ॥

अर्थ—तेरे चरणकमल से उत्पन्न होने वाले छोटे से एक रजकण को चुनकर ब्रह्मा सतत लोक लोकान्तरो की रचना करता है, शेषनाग उसको जैसे-तैसे अर्थात् बड़े परिश्रम से सहस्र शिरो पर उठाकर धारण कर रहा है और हर उसकी भस्म बनाकर अपने अङ्ग पर लगाते हैं ।

शक्ति की अनन्तता इस श्लोक मे दिखाई गई है । उसकी सापेक्षता से ब्रह्मा, शौरि (शेष) और हर की शक्तियां तुच्छ है, क्योकि वह अनन्त ब्रह्माण्डो की स्वामिनी है और ये एक ब्रह्माण्ड के ही अधिदेव है ।

शौरि—शेषशायी नारायण की शय्या बनाने वाला शेषनाग भी नारायण की ही शक्ति का एक रूप है । शेषनाग सम्पूर्ण ससार को सहस्र शिरो पर उठाकर धारण कर रहा है—'सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्' *से विष्णु का सहस्रशीर्षत्व वेदप्रसिद्ध है । विष्णु के साथ राम,* कृष्ण दोनो अवतारो मे लक्ष्मण और बलभद्र शेष के अवतार माने जाते हैं । योगदर्शन के सूत्रकार ऋषि पतञ्जलि को भी शेष का ही अवतार कहा जाता है । परन्तु यहाँ शेष को विष्णु का ही एक नाम देकर नामाङ्कित किया गया है

शिशुमारात्मना विष्णु सप्त लोकानध स्थितान् ।
धत्ते शेषतया लोकान् भूरादीनूर्ध्वतस्स्थितान् ॥

दत्तात्रेय योगी ने भी कहा हैं।

यत्पादपद्ममकरन्दकणा धरित्री
यन्मध्यवर्तिविवरं गगनं समग्रम्।
यद्गात्रसङ्गिकिरणत्रसरेणुरेक-
स्तस्यास्तवाम्ब वपुषो मितिरीशवेद्या॥

चरण—चरण चार हैं—शुक्लरक्तमिश्रनिर्वाणाः। सत्त्वप्रधान शुक्ल है, रजःप्रधान रक्त है। तमःप्रधान मिश्र है और गुणातीत निर्वाण है।

"शुक्लरक्तयोराज्ञाचक्रं द्विदलम्, मिश्रस्य हृत्कमलम्, निर्वाणस्य सहस्रदलं द्वादशान्तस्थम्। शुक्लरक्तयोः ब्रह्मविष्णू ध्येयौ, मिश्रे रुद्रः, निर्वाणे साक्षात्-परमानन्दनिर्भरः सदाशिवरूपः चिन्तनीयः।"

श्रुति ने भी कहा है—

"चरणं पवित्रं विततं पुराणम्। येन पूतस्तरति दुष्कृतानि। तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः। अपि पाप्मानमरातिं तरेम। लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम्। ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत्। चरणं नो लोके सुधितां दधातु।"

दत्तात्रेय महायोगी ने भी कहा है।

भ्रूमध्यगौ विधिहरी तव रक्तशुक्लौ
पादौ रजोऽमलगुणौ खलु नेत्रमानौ।
सृष्टिस्थिती वितनुतो हृदयं तृतीय-
मङ्घ्रिं भजन् हरति विश्वमुदग्रमुग्रः॥
तुर्यं तवाम्ब चरणं निरुपाधिबोधं
सान्द्रामृतं शिवपथे सततं नमामि॥"

लोकान्—लोक से अभिप्राय स्थावर एवं जङ्गम दोनों से है। सात ऊर्ध्वलोक हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।

सात अधोलोक हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ—विरिञ्चिशब्द इकारान्तः। 'विरिञ्चि-श्च विरिञ्चनः' इति अमरकोषे।

शौरि —शृणाति हिनस्ति दशतीति शौरि सर्पराज ।

अथवा—शौरि विष्णु । शेषपक्षेऽपि शेष एव विष्णु,
रक्षणे विष्णोरेवाधिकारात् ।

व्याख्या—वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन अणुवाद के समर्थक हैं। साख्य और योग दोनो प्रधान कारणवादी है। वेदान्त सृष्टि का आदि कारण ईश्वर की इच्छा शक्ति को मानता है। परन्तु इस श्लोक मे शङ्कर भगवत्पाद ने तीनो वादो का समन्वय करते हुए वेदान्त के इच्छाशक्तिवाद का ही समर्थन किया है। 'पासु' अणुवाद की ओर सकेत करता है। 'चरणपङ्केरुह' जड प्रधानकारणवाद की ओर सकेत करता है। तव' महात्रिपुरसुन्दरी इच्छाशक्ति की ओर सकेत करता है।

यहाँ भगवती के चरणो को कमलो की उपमा दी गई है। यहाँ इच्छा-शक्ति के, तमोगुण की शक्ति होने के कारण, घनीभूत होने पर जडावस्था मे परिणत होने को पङ्क से उपमित किया है। जैसे कमल की पराग रूपी रज कमल से ही उत्पन्न होती है, वैसे ही यह पासु-कण भगवती के चरणो से उद्भूत हैं। परिणत होकर अणुओ का रूप धारण कर लेते हैं। ऋग्वेद के म० १०, अ० ८, सूक्त ७२ ऋचा ६ मे सृष्टि के क्रम का उल्लेख है—

यद्देवा अद सलिले सुसरब्धा अतिष्ठत्।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरजायत॥

हरि, हर और ब्रह्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना करके जो अनन्त शक्ति बच रहती है, वह आणविक रूप धारण करने के लिए मानो कुण्डलो मे घूमने लगती है और उसके कुण्डलाकृति रूपों के कारण उसकी सर्प से उपमा दी गई है।

यहाँ पासु और एन शब्दो मे एकवचन का प्रयोग किया गया है। अत इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि प्रत्येक अणु मे भगवती के चरण हैं—

/ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात्।

अर्थात् प्रत्येक परमाणु अनन्त शक्ति से परिपूर्ण है।

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवति ॥३॥

पदयोजना—[हे भगवति ! तव पादाब्जरेणुः एषः] अविद्यानाम् अन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनकरी, जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी, दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका, जन्मजलधौ निमग्नानां मुररिपुवराहस्य दंष्ट्रा भवति ॥

अर्थ—तू अविद्या में पड़े हुओं के हृदयान्धकार को हटाने के लिए चैतन्यस्तवक से निकलने वाले मकरन्द के स्रोतों का झरना है, दरिद्रियों के लिए चिन्तामणियों की माला है और जन्म-मरणरूपी संसार-सागर में डूबे हुओं को विष्णु भगवान् के वराहावतार के दांत के सदृश उद्धार करने वाली है।

शक्ति की उपासना से अज्ञान का नाश होता है। दरिद्रियों को धन मिलता है। जड़ता का नाश होता है। और वह सांसारिक विषय की वासना रूपी सागर में डूबते हुओं को सहारा देता है। इसलिए शक्ति की ही उपासना करनी चाहिए।

"बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां
कोदण्डभिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां
ध्यायेत्समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम् ॥"

पाठभेदः—दीपनगरी

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियां—अविद्या—अर्शआदित्वात् अच्प्रत्ययः अथवा अविद्याऽविष्टचित्ता अपि उपचारेण अविद्या। इति।

चैतन्य—चेतनैव चैतन्यम्, स्वार्थे ष्यञ्।

अलङ्कार—परिणामालङ्कार, उल्लेखालङ्कार, रूपक अलङ्कार।

व्याख्या—जब तक मन की वृत्तियां बहिर्मुखी रहती हैं, आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं दीखता। कुण्डलिनी शक्ति जागकर जब सुषुम्ना-पथ में छहों

चक्रों का वेधन करती हुई सहस्रार मे शिवसायुज्य पद पर आरूढ होने जाती है, तब प्रतिप्रसव क्रम द्वारा वह सब इन्द्रियो को अन्तर्मुखी कर देती है। जितना मनुष्य देहवृत्ति का त्याग करके आत्मस्थिति मे ऊँचा उठ जाता है, उसे शारीरिक कष्ट उतना ही कम सन्ताप पहुचाते हैं। साधक का देहाध्यास शिथिल हो जाने पर वह आत्मस्थिति की उच्च भूमिकाओ का अनुभव करने लगता है और आनन्द की लहरें उसकी प्रत्येक नाडी मे प्रवाहित होने लगती हैं।

मुरारि विष्णु भगवान् ने वराह अवतार धारण करके पाताल मे धँसती हुई पृथ्वी को उबारा था। मूलाधार पृथ्वी तत्त्व का स्थान है और चरण पाताल के स्थान माने जाते हैं। जीव ने पार्थिव शरीर मे अध्यस्त होकर अपने को अन्धकार मे डाल रखा है। जितना-जितना वह मूलाधार से ऊपर उठता जाता है, उसका अध्यास सूक्ष्म होता जाता है। और सहस्रार मे पहुच कर सर्वथा मुक्त हो जाता है। इसलिये जन्म मरण रूपी ससार की पाताल रूपी दलदल से निकलने के लिए उसे भगवती की वैष्णवी वाराही शक्ति का आश्रय लेना चाहिए।

इस श्लोक से 'मुररिपुवराहस्य दंष्ट्रा' कहने से स्पष्ट हार्दि विद्या की ओर सकेत लक्षित होता है।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥४॥

पदयोजना—[हे भगवति!] लोकाना शरण्ये! त्वदन्यो दैवतगणः पाणिभ्यामभयवरदः। एका त्वं [पाणिभ्यां] प्रकटितवराभीत्यभिनया नैवासि हि। तव चरणावेव भयात्त्रातुं वाञ्छासमधिकं फलमपि च दातुं निपुणौ।

अर्थ—हे लोको की शरण्ये! तेरे सिवाय अन्य सब देवतागण दोनों हाथों के अभिनय से अभयदान अथवा वरदान देते समय हाथो से अभिनय नही करते। भय से त्राण करने मे और वाञ्छा के अनुकूल वर प्रदान करने मे तेरे दोनो चरण ही निपुण है।

व्याकरणसम्बन्धी टिप्पणियाँ—दैवतगणः—देवता एव दैवतानि, विनयादित्वात् स्वार्थे अण् । स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ।

व्याख्या—देवता अपने भक्तों पर दो प्रकार से अनुग्रह करते हैं। कुछ देवता स्वर्गदाता हैं। कुछ देवता मुक्तिदाता हैं। दोनों प्रकार के अनुग्रहों को देवता अपने हाथों के अभिनय से प्रकट करते हैं। परन्तु भगवती सब देवताओं से अधिक प्रभावशाली हैं।

ईशत्वभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतिदिनं प्रलयाभिभूताः ।
एकः स एव जननि स्थिरबुद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत्प्रणतिं करोति ॥ क्रमस्तुति

उसके दोनों चरण सर्वशक्तिसामर्थ्ययुक्त हैं। वह अपने भक्तों को भुक्ति और मुक्ति दोनों वर देने में समर्थ हैं।

'यत्रास्ति भोगो न हि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न हि तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥'
ईश्वरविरचितमनोहरस्तोत्र

भगवती चारों हाथों में इक्षुधनुः, ५ बाण और अंकुश एवं पाश धारण किए हुए है इसलिए वह हाथों का अभिनय नहीं करती। कराभिनय द्वारा वर देने की इच्छा को किसी प्रकार प्रकट करने की क्या आवश्यकता है? जो मनुष्य अनन्यभाव से शरण में आता है, उसकी सब कामनाएं स्वयं पूर्ण हो जाती हैं।

इस श्लोक में भगवती की उपासना के लिए 'ऐं क्लीं सौः' इस बाला मन्त्र का संकेत है जो भुक्ति मुक्ति दोनों देता है।

अलङ्कार—यहाँ व्यतिरेकालङ्कार और काव्यलिङ्ग अलङ्कार स्पष्ट है। अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥५॥

पदयोजना—[हे भगवति !] प्रणतजनसौभाग्यजननीं त्वां हरिराराध्य पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् । स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा महतां मुनीनामप्यन्तर्मोहाय प्रभवति हि ॥

अर्थ – हरि (विष्णु भगवान्) ने पूर्वकाल में, प्रणतजनों को सौभाग्य प्रदान करने वाली, तेरी आराधना करके नारी का मोहिनी रूप धारण कर, त्रिपुरारि महादेव के भी चित्त में काम का क्षोभ उत्पन्न कर दिया था। और कामदेव स्मर भी तुमको नमन करने के कारण ही अपनी पत्नी रति के नयनों द्वारा चुम्बन किए जाने वाले शरीर से बड़े-बड़े मुनियों के भी अन्तःकरण में मोह उत्पन्न कर देता है।

व्याख्या – पुराणों की गाथा के अनुसार देवता और असुरों ने मिलकर समुद्र का मन्थन किया था जिसमें से १४ रत्न निकले। लेकिन अमृत के बटवारे के लिए दोनों में विवाद हो गया। विष्णु भगवान् मोहिनी का रूप धारण करके अमृत बाँटने का कार्य करने लगे। मोहिनी रूप से सब असुर मोहित हो गये और सारा अमृत देवताओं को बाँट दिया गया। लेकिन अमृत से पूर्व जो हलाहल निकला था, उसके प्रभाव से सारा विश्व जलने लगा। उसे शङ्कर भगवान् ने पीकर सबकी रक्षा की और शङ्कर एकान्त में जाकर समाधिस्थ होकर बैठ गए। उठने पर विष्णु भगवान् से उस मोहिनी रूप को देखने की इच्छा प्रकट की। उसे देखकर शङ्कर इतने मोहातुर हुए कि काम के क्षोभ से अपने को भूलकर मोहिनी के पीछे दौड़ने लगे। पट्कूटविद्या से तेरी उपासना करके, कामकला की भावना से युक्त होकर तेरे सारूप्य को प्राप्त करके मदनारि मोहित हो गए। पट्कूटविद्या लोपामुद्रोपासितविद्या से और नन्दिकेश्वरोपासितविद्या से प्राप्त होती है। ज्ञानार्णव में कहा है—

लोपमुद्रा पुनर्देवि विलिखेत्तदनन्तरम् ।
नन्दिकेश्वरविद्या च पट् कूटा वैष्णवी भवेत् ॥

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह संसार एक महासागर है जो अनेक रत्नों

की खान है। ध्यानरूपी मथानी से उसका मन्थन किया जाता है। मन ही वह वासुकी नाग रूप रस्सी है जिसने सारे जगत् को डस रखा है। उसका मुख वहिर्मुखी और पूंछ अन्तर्मुखी है। मुमुक्षुओं को संसार सागर के रत्नों की प्रेयासक्ति छोड़कर तितिक्षा सहित दुःखों को सहन करते हुए भगवती के सौन्दर्य का आश्रय लेकर उसकी आराधना करनी चाहिए।

पाठभेद—श्री अच्युतानन्द जी 'प्रणतजनसौभाग्यजननी' को 'प्रणतजन-सौभाग्यजननि ई' पढ़कर इस प्रकार अर्थ करते हैं—

'हे प्रणतजनसौभाग्यजननि! हरि तेरी ई रूप से आराधना करके मोहिनी का रूप ग्रहण करते हैं। ई काम-कला है और कादि विद्या का तीसरा अक्षर है और अनुस्वार (शिव) सहित माया, लक्ष्मी और काम-बीजों में रहता हे। इस श्लोक से साध्य-सिद्धासन-विद्या परिलक्षित होती है। यह विद्या ह्रीं क्लीं ब्लें है। हादि विद्या मोक्ष देती है और कादि विद्या की उपासना से रूप-लावण्य सहित सब ही सिद्धियों की प्राप्ति होती है। ह्रीं क्लीं ब्लें' इस मन्त्र मे हृदय चक्र और महानाद के ऊपर शक्ति का न्यास किया जाता है। इसका फल सर्व सौभाग्य की प्राप्ति है।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्च विशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाऽप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते! कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥६॥

पदयोजना—[हे] हिमगिरिसुते! [यस्यानङ्गस्य] धनुः पौष्पं, मौर्वी मधुकरमयी, विशिखाः पञ्च, सामन्तो वसन्तः, आयोधनरथः मलयमरुत्, तथाऽपि [सः]अनङ्गः एकः ते अपाङ्गात् कामपि कृपां लब्ध्वा सर्वमिदं जगत् विजयते ॥

अर्थ—हे हिमगिरिसुते! धनुष पुष्पों का बना है, उसकी रस्सी भौंरों की बनी है, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-पाँच विषय उसके बाण हैं, वसन्त ऋतु उसका योद्धा सामन्त है, मलयगिरि का शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन उसका युद्ध में बैठने का रथ है और वह स्वयं अनङ्गः (शरीर रहित) है—ऐसा कामदेव तेरे कटाक्ष से थोड़ी सी ही कृपा प्राप्त करके सारे जगत् को अकेला जीत लेता है।

व्याख्या—कामदेव को अपनी समाधि मे विघ्नरूप देखकर शिव जी ने

तीसरा नेत्र खोला और ज्ञानाग्नि से उसे भस्म कर दिया। तब से काम अनङ्ग हो गया है। काम समाधि के लिए बहुत बड़ा विघ्न है, बड़े-बड़े ऋषियों को भी पथभ्रष्ट कर देता है। परन्तु कामदेव का सारा सामर्थ्य भगवती के अति स्वल्प कृपा-कटाक्ष का ही तो फल है। इसलिए मुमुक्षुओं को कामदेव से बचने के लिए भगवती की ही शरण में जाना चाहिए।

इस श्लोक से काम बीज क्लीं का उद्धरण किया जाता है। काम से 'ककार' मलय से 'लकार' और मौर्वी में 'ई' और 'पौष्ण' से अनुस्वार लेना चाहिए।

व्याकरण—विजयते 'विपराभ्यां जे' इत्यात्मनेपदम्।

क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा (नता)
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका॥७॥

पदयोजना—क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता मध्ये परिक्षीणा परिणतशरच्चन्द्रवदना धनुः बाणान् पाशं सृणिमपि करतलैः दधाना पुरमथितुराहोपुरुषिका नः पुरस्तादास्ताम्॥

अर्थ—कटि (प्रदेश) पर क्वण-क्वण शब्द करने वाले घुंघुरुओं युक्त मेखला बांधे हुए, हाथी के बच्चे के मस्तक पर निकले हुए कुम्भ सदृश स्तनों के भार से झुकी हुई, मध्य भाग में पतली, शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे मुख वाली, चारों हाथों में धनुष, पाँच बाण, पाश और अङ्कुश धारण किए पुरारि की आहोपुरुषिका हमारे सामने रहे।

व्याख्या—आहोपुरुषिका—पुरमथितुः शिवस्य अहङ्काररूपा। त्रिपुरारि अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों से अतीत ब्रह्मस्वरूप में अहम् विमर्श का व्युत्थान होना यहाँ अभिप्रेत है।

आहोपुरुषिका पद भगवती के लिए प्रयुक्त किया गया है। आहो आश्चर्यसूचक पद है और पुरुषिका पुरुष का स्त्रीलिङ्ग भाव-वाचक पद है। अर्थात् भगवती का रूप आश्चर्यमय है। भगवती के अनन्यसाधारण प्रभाव

के कारण ही शङ्कर के श्मशानवासी और अमङ्गलशील होने पर भी १४ भुवनों में उसकी पूजा होती है।

चर्माम्बरञ्च शवभस्मविलेपनञ्च, भिक्षाटनञ्च नटनञ्च परेतभूमौ।
वेतालसंहितपरिग्रहता च शम्भोः, शोभां वहन्ति गिरिजे तव साहचर्यात्॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से सम्वन्धित पाँच प्रकार के विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मक पाँच पुष्पवाण हैं। आसक्ति ही वह पाश है जिससे सारा जगत् वंधा हुआ है। क्रोध अथवा द्वेष प्रकृति का अंकुश है इससे युक्त होकर मनुष्य पापकर्म करने को वाध्य हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से युक्त पाँच पुष्प वाण वाला इक्षु-धनुष कामदेव का भी अस्त्र है और कामिनी स्त्री स्वयं शक्ति का रूप है इसलिए साधकजनों को महामाया के आखेट से वचने के लिए कामिनी के काम-वाणों से वचना चाहिए और भगवती के चरणों का हृदय में ध्यान करना चाहिए। 'सो परनारि लिलार गुसाईं तजहु चौथ चन्दा की नाईं। रामायण सु० का०

इस श्लोक से व्लूं वीज ग्रहण किया जाता है। वाण से व्, करतल से ल्, मथितुः से उ और आस्तां से अनुस्वार लिया गया है।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाऽऽकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥८॥

पदयोजना—सुधासिन्धोः मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां चिदानन्द-लहरीं त्वां कतिचन धन्याः भजन्ति॥

अर्थ—सुधा के समुद्र के मध्य कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरे हुए मणि द्वीप में, नीप वृक्षों के उपवन के वीच चिन्तामणियों के वने घर में, त्रिकोणाकृति मञ्च पर, परमशिव के पलंग पर विराजमान चिदानन्दलहरी स्वरूप तेरा कोई विरले और धन्य मनुष्य ही भजन करते हैं।

व्याख्या—रुद्रयामल में भी इसी भाव को व्यक्त किया है—

"यस्य नो पश्चिमं जन्म न स्वयं यो महेश्वरः।
स न प्राप्नोति परमां दशपञ्चाक्षरीमिमाम॥"

निःस्पन्द परमशिव आनन्दब्रह्म सुधासिन्धु है और चिदानन्दलहरी स्वयं चितिशक्ति है जिसका स्थान सहस्रार पद्म में है। सहस्रार ही वह मणिजटित उपवन है द्वीप है जिसमें चारों ओर कल्पवृक्षों का घेरा है और मध्य में नीप वृक्षों का उपवन है, जिसमें चिन्तामणियों से घर बनाया गया है। उसमें त्रिकोणाकृति ग्रन्थ अथवा गुरुचक्ररूपी मञ्च पर बिन्दु रूपी पलङ्ग बिछा हुआ है। वहां सच्चिदानन्द की प्रथम स्पन्दस्वरूपा चिदानन्दलहरी शिव के साथ विहार करती है।

१२वें श्लोक में हरि, रुद्र, ब्रह्मा और महेश्वर को पलङ्ग के चार पाये बताया गया है। सदाशिव को पलङ्ग पर बिछाने की चादर से उपमा दी गई है। अथवा ओउम् पलङ्ग है। अ, उ, म् और अनुस्वार उसके चार पाये हैं। अथवा मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर और अनाहत चक्र चार पाये हैं और विशुद्ध चक्र उस पर बिछी चादर है। देह श्रीचक्र है। श्रीचक्र भगवती का निवास स्थान है।

इस श्लोक में 'चिदानन्दलहरी' पद के कारण प्रथम ४१ श्लोकों के ग्रन्थ के पूर्व भाग को आनन्दलहरी कहते हैं।

आनन्द से 'क' और लहरी से 'लह्रीं' लेकर हादि विद्या के तीनों कूटों को ग्रहण किया जा सकता है।

> महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
> स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
> मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
> सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥९॥

पदयोजना—[हे भगवति !] मूलाधारे महीं, कम् अपि [मूलाधारे] मणिपूरे हुतवहम्, स्वाधिष्ठाने स्थितम् हृदि मरुतम्, आकाशमुपरि, मनोऽपि भ्रूमध्ये [स्थितमिति लिङ्गव्यत्ययेन सर्वत्रानुषज्यते।] सकलं कुलपथमपि भित्वा सहस्रारे पद्मे रहसि पत्या सह विहरसि।

अर्थ—*पृथ्वी तत्त्व को मूलाधार में और जल को भी मूलाधार में ही, मणिपूर में अग्नितत्त्व को जिसकी स्थिति स्वाधिष्ठान में है, हृदय में* वायु तत्त्व को और ऊपर विशुद्ध (चक्र) में आकाशतत्त्व को और मन को भी भ्रूमध्य में—इस प्रकार सकल कुल पथ (शक्ति के मार्ग) का वेध करके तू सहस्रार पद्म में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है।

व्याख्या—यहाँ अन्तर्योग का वर्णन है। कुण्डलिनी शक्ति का षट् चक्र-वेध पूर्वक आरोहण बताया गया है।

चक्रों का स्थान मेरुदण्ड (Spinal bone) के भीतर नीचे से मस्तिष्क तक उठने वाली सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Code) में है। इसके द्वारा शरीर की नाड़ियों का मस्तक से सम्बन्ध है। गुदा के पीछे एक मांसपेशी है जिसे कन्द कहते हैं। उसकी नाभि अर्थात् केन्द्र में कुण्डलिनी स्वयंभू लिङ्ग पर साढ़े तीन कुण्डल डाले सोती रहती है। जागकर वह स्वाधिष्ठान चक्र में रहने लगती है। उस अवस्था में जीव को बिन्दु रूपी शिव कहते हैं और कुण्डलिनी को जीवरूपा शक्ति।

आज्ञाचक्र में चढ़कर वही परमात्मारूपी शक्ति त्रिपुरा कहलाती है जो सहस्रार में शिव के साथ सायुज्यता प्राप्त कर लेती है। षट् चक्रवेध के पूर्व शक्ति का रूप जीवात्मिका होता है। जीवात्मिका का स्थान स्वाधिष्ठान और शिवात्मिका का स्थान विशुद्ध चक्र है।

वेध के समय शक्ति की गति मूलाधार से सहस्रार की ओर होती है। सहस्रार से नीचे उतरते समय वह नाड़ियों को अमृत से सींचती हुई मूलाधार की ओर लौटती है। आरोह को उन्नेय भूमिका और अवरोह को अन्वय भूमिका कहते हैं। प्रत्यावृत्ति से कुण्डलिनी का नीचे उतर कर अपने स्थान पर गुहा में लौट आने का अभिप्राय है। इसको अप्यय और प्रभव क्रम भी कहते हैं। दोनों के सिद्ध होने पर योग की सिद्धि होती है।

'योगो हि प्रभवाप्ययौ'

यह क्रम कुण्डलिनी—सोपान—रहस्य के नाम से प्रसिद्ध है।
रहस्यसिद्धिसोपान में भी कहा है—

"कुण्डलिन्या महीभेदे योगी त्यजति मेदिनीम्।
सलिलस्थानयोगेन जले चलति योगवित्॥

वह्नेर्भेदे जलमिव स्पृशत्यग्निं ज्वलच्छिखम्।
मरुद्भेदे शीघ्रगतिर्याति क्रोशशतं क्षणात्॥

व्योमभेदे खे चरति मनोभेदे मनोगतिः।
यत्र कामयते तत्र याति लोकत्रयेऽपि च॥

सयोज्यन्छिवपदे शिव एव प्रजायते ।
कर्ता हर्ता च सर्वत्र सुरासुरनमस्कृत ॥

ध्यान तीन प्रकार का होता है । स्थूल, सूक्ष्म और पर "क्वणत्काञ्चीदाम" इस श्लोक मे स्थूलध्यान कहा गया है । 'चिदानन्दलहरी' इसमे पर-ध्यान कहा गया है और "मही मूलाधारे" इस श्लोक मे सूक्ष्म ध्यान कहा गया है ।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितै·
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ।
अवाप्य स्वां भूमि भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिपि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥१०॥

पदयोजना—सुधाधारासारै चरणयुगलान्तर्विगलितै प्रपञ्च सिञ्चन्ती रसाम्नायमहस [सकाशात्] स्वा भूमि पुनरप्यवाप्य भुजगनिभमध्युष्टवलय स्वमात्मान कृत्वा कुहरिणि कुलकुण्डे स्वपिपि ।

अर्थ—अमृत धाराओ की वर्षा से, जो तेरे दोनो चरणो के बीच से टपकती है, प्रपञ्च को सीचती हुई, फिर छहा आम्नायो मे होती हुई अथवा छहो चक्रो द्वारा सीचती हुई अपनी भूमि पर उतर कर अपने आप को सर्पिणी के सदृश साढे तीन कुण्डल डालकर, हे कुहरिणि ! तू कुलकुण्ड मे सोती है ।

चतु शती के इन दो पद्यो मे भी कुलकुण्डलिनी रहस्य बताया गया है ।

"मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्त रक्तोर्णातन्तुसन्निभाम् ।
कुलकुण्डलिनी नित्या विद्युदुल्लासद्युतिम् ॥

मत्तालिकुलझङ्कारसदृशतरनादिनीम् ।
उन्नीयोन्नीय चक्रेपु क्रमात्स्यन्दति वैभवम् ॥

अनुभूय पर गत्वा पीत्वा कुलपरामृतम् ।
अकुलात्कुलक भूय कुलादकुलक मह ॥
एव मा सुन्दरी ध्यायेत्सूक्ष्मध्यान प्रकीर्तितम् ।"

यहां पर कुण्डलिनी का सहस्रार मे कुछ समय ठहरकर अपने स्थान मे

उतर आना दिखाया है। मूलाधार से जागकर सुषुम्ना मार्ग द्वारा कुण्डलिनी हृदयस्थ सूर्य को उन्मुख करती हुई आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रमण्डल में प्रवेश करती है। तब उसके चरणद्वय के बीच से अमृत की धाराएं नीचे बरसने लगती है। सब नाड़ियों का भिन्न-भिन्न चक्रों के द्वारा अमृत के प्रवाह से सारे शरीर में आनखशिख सिञ्चन होता है। जिस मार्ग से शक्ति का आरोहण होता है, उसी मार्ग से अवतरण होकर वह फिर अपने स्थान पर सर्पाकार साढ़े तीन कुण्डल डालकर सो जाती है।

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभाऽऽशुभा ॥

(वामकेश्वरमहातन्त्र)

श्रुति भी इसी प्रपञ्च सेचन का प्रतिपादन करती है—

लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम्, ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत्।
अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं, चरणं नो लोके सुधितान् दधातु।

नाड़ियों की संख्या प्रश्नोपनिषद् में इस प्रकार दी गई है—

अत्रैतदेकशतं नाड़ीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां,
द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति।

प्रश्नोपनिषद् ३,७

तान्त्रिक पद्धति के अनुसार उपासना के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और वाम—६ आम्नाय हैं। इन सबका फल शक्ति का जागरण होकर समाधि प्राप्त करना ही है। उक्त आम्नाय गुरु-परम्परागत उपदेश से जानने चाहिएँ।

इस श्लोक में प्रपञ्च का अभिप्राय देह से है। अण्डप्रपञ्च और पिण्ड-प्रपञ्च में कोई अन्तर नहीं है। ऐक्याभिधानार्थम्)

योगदीपिका में कहा है।

अण्डे तु ये प्रपञ्चाः स्युः पिण्डे ते च प्रतिष्ठिताः।
लघुत्वगुरुताञ्चर्ते न भेदस्त्वण्डपिण्डयोः ॥

तथाहि—

अण्डे लोकालोकगिरिः, पिण्डे त्वचः। अण्डे जलधिः, पिण्डे रक्तम्। अण्डे गङ्गादि नद्यः, पिण्डे इडापिङ्गलादि नाड्यः...

व्याकरण—कुहरिणि—'अत इनिठनौ'
इति सूत्रेण इनिप्रत्यय '
'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप्'
'रषाभ्या नो ण समानपदे' इति णत्वम् ।

अभ्युष्ट—'उष' दाहे अभिपूर्वात् क्त प्रत्यये 'ष्टुना ष्टु '
इति ष्टुत्वम् । सम्बोधने एकवचनम् ।

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलय-
त्रिरेखाभि सार्धं तव शरण (भवन) कोणा परिणता
॥११॥

पदयोजना—चतुर्भि श्रीकण्ठै पञ्चभि शिवयुवतिभि अपि नवभिरपि मूलप्रकृतिभि तव त्रयश्चत्वारिंशत् शरण (भवन) कोणा परिणता शम्भो प्रभिन्नाभि वसुदलकलाश्रत्रिवलयत्रिरेखाभि सार्धम् ।

अर्थ—चार श्रीकण्ठ और पाँच शिवयुवतियाँ इन ६ मूल प्रकृतियो से तेरे रहने के ४३ त्रिकोण बनते हैं जो शम्भु के बिन्दुस्थान से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तो और तीन रेखाओ सहित ८ और १६ दलो से युक्त हैं।

व्याख्या—यहाँ बहिर्याग का वर्णन है। श्रीचक्र ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनो का प्रतीक होता है। इसकी रचना ४ शिव त्रिकोण और ५ शक्ति-त्रिकोणो के योग से होती है। सृष्टिक्रम मे ५ शक्ति-त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते है, चार शिवत्रिकोण अधोमुख और अप्ययक्रम मे। शक्ति त्रिकोण अधोमुख और शिव-त्रिकोण ऊर्ध्वमुख रखे जाते हैं। यहाँ त्रयश्चत्वारिंशत् पाठ ठीक है। क्योकि प्रथम केन्द्रीय त्रिकोण को छोडकर शेष त्रिकोणो की सख्या ४२ है। प्रथम मध्य त्रिकोण के बाहर चारों ओर दूसरे नम्बर पर ८ कोण बनते हैं। फिर तीसरे और चौथे स्तर पर दश-दश कोण बनते है। उनके ऊपर १४ कोण बनते हैं। सबका योग १+८+१०+१०+१४=४३ होता है। ४३ कोणो के चक्र के बाहर प्रधान वृत्त पर अष्टदलपद्म और उसके बाहर दूसरे वृत्त पर षोडशदलपद्म है। षोडशदलपद्म तीन वृत्तों से घिरा है। सबमें बाहर तीन रेखाओं का चतुष्कोण

है जिसे भूगृह कहते हैं। भूगृह की चार भुजाएं बराबर हैं और चारों दिशाओं में ४ द्वार होते हैं।

कामिका में शरीर को श्रीचक्र माना गया है।

त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जाशुक्लप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः॥

पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चप्राण शक्तितत्त्व हैं। माया शुद्ध-विद्या महेश्वर और सदाशिव शिवतत्त्व है।

'कुछ विद्वान् ५१ तत्त्व, कुछ ६४ और अन्य २५ तत्त्व मानते हैं। वे अपने मत की पुष्टि वैदिक ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं। श्रीचक्र को बनाने के तीन भेद होते हैं—मेरु, कैलाश और भूः। तीन भेदों में शक्तियों के स्थानों और पूजनविधि में अन्तर है। मेरु श्रीचक्र में उसको १६ नित्य कलाओं से, कैलाश प्रतीकस्वरूप श्रीचक्र में उसको ८ मातृका शक्तियों से और भूः के प्रतीकस्वरूप श्रीचक्र में उसे ८ वशिनी देवियों से सम्बन्धित चक्र समझा जाता है। तैत्तिरीयारण्यक में कहा है कि पृश्नि ऋषियों ने भी श्रीचक्र की पूजा की थी और उसकी सहायता से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करके उसे सहस्रार में उठाया था।

व्याकरण—चरणम्—'चर' गतिभक्षणयोरिति चरधातोः चरति—गच्छति सर्वमपि लोकं व्याप्नोति—चरति भक्षयति सर्वमज्ञाननिकुरम्बमिति कर्तरि कारके सति अधिकरणव्युत्पत्त्या ल्युट्प्रत्यये चरणमिति सिद्धम्।

त्रयश्च-वलयाः—द्वन्द्व समास।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्॥१२॥

पदयोजना—हे तुहिनगिरिकन्ये! त्वदीयं सौन्दर्यं तुलयितुं विरिञ्चि-प्रभृतयः कवीन्द्राः कथमपि कल्पन्ते। अमरललनाः आलोकौत्सुक्यात् तपोभिः दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीं मनसा यान्ति॥

अर्थ —हे हिमगिरिपुत्री ! तेरे सौन्दय की तुलना करने को ब्रह्मा प्रभृति कवीन्द्र भी कुच्छ्-कुच्छ कल्पना किया करते हैं। स्वर्ग की अप्सराएँ तेरे सौन्दय को देखने की उत्सुकता के कारण तप से भी कठिनता से प्राप्त होने वाली शिवसायुज्यपदवी को मन से प्राप्त कर लेती हैं।

भगवती का सौन्दय कल्पनातीत है। किन्तु सौन्दय की कल्पना करने से समाधि लग सकती है। शिवसायुज्य पदवी की प्राप्ति होती है शिवसायुज्य से मुक्ति की प्राप्ति होती है क्योंकि सहस्रार में शिव शक्ति का ऐक्य होने पर परमपद की उपलब्धि कही गई है।

यत्रास्ति भोगो न हि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न हि तत्र भोग ।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकाना भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्थितव ।

व्याकरण—औत्सुक्य—ल्यब्लोपे पञ्चमी यद्वा निमित्तपञ्चमी। यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

नर वर्षीयास नयनविरस नर्मसु जड
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतश ।
गलद्वेणीबन्धा कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतय ॥१३॥

पदयोजना—वर्षीयास नयनविरस नर्मसु जड तवापाङ्गालोके पतित नर गलद्वेणीबन्धा युवतय गलद्वेणीबन्धा कुचकलशविस्रस्तसिचया हठात्त्रुट्यत्काञ्च्य विगलितदुकूला [सत्य] अनुधावन्ति ॥

अर्थ—वयोवृद्ध दर्शन में कुरूप क्रीडा में जड मनुष्य भी तेरी दृष्टि पड़ने मात्र से ऐसा रमणीय हो जाता है कि सैकडो युवतियाँ जिनकी वेणी के बन्ध खुल गए हैं कुच-कलशों पर से चोली फट गई हैं जिनकी मेखला हठात् टूट गई है और जिनकी साडी शरीर से उतरी जा रही है—उसके पीछे भागने लगती हैं।

शक्ति जागरण से काय विभूति भी प्राप्त हो सकती है जो षट्चक्र वेध द्वारा पञ्चमहाभूत जय होने पर होती है। रूप-लावण्य बल और शरीर का वज्रवत्-सुगठित होना कायसम्पत् कहलाता है उस मनुष्य की शरीर की glands में रसोत्पादन की शक्ति इतनी बढ जाती है कि शरीरस्थ निर्माण शक्ति का ह्रास बन्द हो जाता है। उसके स्नायुओं में जीवन शक्ति सञ्चार करने लगती है और सातो धातुओं का पुन निर्माण होने लगता है।

शरज्ज्योत्स्नांशुभ्रा शशियुतजटाजूटमुकुटां
वरत्रासत्राणस्फटिकघुटि(ग) कापुस्तककराम् ।
सकृन्न त्वां नत्वा कथमिव सतां सन्निदधते
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितय ॥१५॥

पदयोजना—शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रा शशियुतजटाजूटमुकुटा वरत्रासत्राण स्फटिकघटिकापुस्तककरा त्वा सकृन्नत्वा सता मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितय कथमिव न सन्निदधत ॥

अर्थ—शरद् पूर्णिमा की चाँदनी के सदृश शुभ्रवर्णा द्वितीया के चन्द्रमा-युक्त जटाजूटरूपी मुकुट धारण किए हुए दो हाथों से भक्तों को त्रास से त्राणार्थ अभयपद और वरद अभिनय किये हुए और दोनो हाथो मे स्फटिक मणियो की माला और पुस्तक धारण किए हुए तुमको एक बार भी नमन न करने वाला मनुष्य किस प्रकार मल्लिका की सी मधु दूध और द्राक्षा की मधुरता से युक्त मधुर कविता कर सकता है ?

व्याख्या—इस श्लोक मे सात्त्विक भाव युक्त कविता-शक्ति के विकास का वर्णन है । अच्युतानन्द के अनुसार यहाँ वाग्भव रूप क्रिया शक्ति का ध्यान है अर्थात् वाग्भव कूट की देवी क्रिया शक्ति का ध्यान बताया गया है । यहाँ कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर सारस्वत सिद्धि की ओर सकेत है । कुण्डलिनी शक्ति जागकर चार रूपो मे प्रकट होती है क्रियावती, कलावती, वर्णमयी और वेधमयी । इस श्लोक म तथा अगले दो श्लोकों म भी सारस्वत प्रयोग का ध्यान बताया गया है ।

इस मन्त्र के साथ ऐँ बीज की उपासना की जाती है ।

कवीन्द्राणा चेत कमलवनबालातपरुचिम्
भजन्ते ये सन्त कतिचिदरुणमेव भवतीम् ।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतर शृङ्गार लहरी-
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां (भां) रञ्जनममी ॥१६॥

पदयोजना—कवीन्द्राणा चेत कमलवनबालातपरुचि अरुणामव भवती कतिचिद् ये सन्त भजन्त, अमी सन्त विरिञ्चिप्रेयस्या तरुणतरशृङ्गार-लहरीगभीराभि वाग्भि सता रञ्जन विदधति ॥

अर्थ—कवीन्द्रो के चित्त रूपी कमल-वन को खिलाने के लिए उदय होते

हुए सूर्य सदृश अरुणा रूपी आपका जो कोई थोड़े महान् पुरुष भजन करते हैं, ब्रह्मा की प्रिया (सरस्वती) की तरुणतर शृङ्गारलहरी से निकली गम्भीर कविताओं द्वारा सत्पुरुषों का मनोरञ्जन किया करते हैं।

व्याख्या—यहाँ राजसिक भाव युक्त कविता शक्ति के विकास का वर्णन है। वामकेश्वरतन्त्र में भी इसी देवी के इसी रूप का वर्णन मिलता है—

अरुणाख्यां भगवतीमरुणाभां विचिन्तयेत्
पाशाङ्कुशधरां देवीं धनुर्बाणधरां शिवाम् ॥
वरदाभयहस्तां च पुस्तकाक्षस्रगन्विताम् ।
अष्टबाहुत्रिनयनां खेलन्तीममृताम्बुधौ ॥
स करोत्येव शृङ्गाररसास्वादनलम्पटान् ।
सभासदस्सदा सर्वान् साधकेन्द्रस्सभास्थले ॥

आनन्दलहरी के इस श्लोक में कामकूट की देवी इच्छाशक्ति का ध्यान बताया है।

'बालातपरुचि' में बाला पद स्पष्ट रूप से बाला मन्त्र की ओर ध्यान दिलाता है।

यहाँ परम्परित रूपकालङ्कार है।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः ।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिरुचिभि- (रुचिभि-)
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥१७॥

पदयोजना—वशिन्याद्याभिः सावित्रीभिः सह शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभिः त्वां यः सञ्चिन्तयति [हे] जननि स महतां भङ्गिरुचिभिः वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः वचोभिः काव्यानां कर्ता भवति।

अर्थ—वशिनी आदि सावित्रियों सहित, जो चन्द्रकान्त मणि की शिला गढ़ी हुई मूर्तियों की शोभा वाली है, हे जननि! जो मनुष्य तेरा ऐसा ध्यान करता है, वह उच्च कोटि के काव्यों की रचना करने लगता है। उसकी सुन्दर कविता वाग्देवी के मुखकमल के आमोदपूर्ण माधुर्य से युक्त होती है।

व्याख्या—यह श्लोक सात्त्विक और राजसिक दोनों की देवी ज्ञान-शक्ति का ध्यान है। आठ शक्तियां हैं—वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी। अ क च ट त प य श वर्गों वाली सम्पूर्ण मातृका शक्तियां चन्द्रकान्त मणियों की नाईं, जो समस्त वैखरी वाणी का वर्णात्मक आधार हैं। द्रवीभूत होकर उस मणि मे वर्णपदमन्त्र-विग्रहा नवरसयुक्त वैखरी शक्ति का विकास करने लगती हैं।

उच्चकोटि के काव्यों की रचना से अभिप्राय है महाकाव्य की रचना। *महाकाव्य के लक्षण काव्यमीमांसा मे विस्तारपूर्वक कहे गए हैं।*

> तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीध (स) रणिभि-
> र्दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।
> भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयना
> सहोर्वश्या वश्याः कतिकति न गीर्वाणगणिका ॥१८॥

पदयोजना—*तरुणतरणिश्रीसरणिभिः ते तनुच्छायाभिः सर्वां दिवम् ऊर्वीं च अरुणिमनिमग्नाम् यः स्मरति अस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयना* गीर्वाणगणिका उर्वश्या सह कतिकति न वश्या भवन्ति ?

अर्थ—तरुण सूर्य की श्री अर्थात् कान्ति को धारण करने वाले शरीर की छाया (कान्ति) से आकाश और सारी पृथिवी को अपनी अरुणिमा (लाल रङ्ग) मे निमग्न करती हुई तुम्हारा जो स्मरण करता है, घबराई हुई वन की हरिणियों जैसे चञ्चल नयनों वाली उर्वशी सहित कितनी ही स्वर्ग की अप्सराएं उसके वश मे हो जाती हैं।

व्याख्या—शम्भु ने भी इसी तथ्य को इन शब्दों मे व्यक्त किया है—

> यावकाब्धौ निमग्नां यो दिवं भूमिं विचिन्तयेत्।
> तस्य सर्वा वशं याता त्रैलोक्यवनिता द्रुतम्॥

यह शुद्धसत्त्वगुणप्रधानभूमिका है। यहाँ ज्ञानी की दिव्य दृष्टि का वर्णन है जो सब जगत् को ब्रह्ममय देखने लगती है। यह मधुमती भूमिका है जिसमे देवाङ्गनाएँ साधक को पथभ्रष्ट करने का यत्न करती हैं। उर्वशी आदि देवाङ्गनाओं के नेत्र पलक नही झपकते है, वे स्थिर होते हैं (steady, unwinking) लेकिन जब उनमे कामवासना अधिक हो जाती है तब उनके नयन चञ्चल हो जाते हैं। योगियों को हमेशा इनसे सतर्क रहना चाहिए।

मुखं विन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
ह(का) रार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥१९॥

पदयोजना—हे हरमहिषि ! मुखं विन्दुं कृत्वा, तस्याधः कुचयुगं [कृत्वा], तदधः हरार्धं [कृत्वा], तत्र ते मन्मथकलां यः ध्यायेत् सः सद्यः वनिताः संक्षोभं नयतीति यत् तत् अतिलघु किन्तु रवीन्दुस्तनयुगां त्रिलोकीमपि आशु भ्रमयति ।

अर्थ—मुख को विन्दु बनाकर दोनों स्तनों को उनके नीचे दो और विन्दु बनाना चाहिए। उसके नीचे ह (का) र के अर्धभाग का ध्यान करना चाहिए। हे हरमहिषी ! इस प्रकार जो तेरी कामकला का ध्यान करता है, वह तुरन्त स्त्रियों के चित्त में क्षोभ ले आता है। यह तो अति छोटी बात है, अपितु वह सूर्य और चन्द्र रूपी दो स्तन वाली त्रिलोकी को भी घुमा सकता है।

व्याख्या—त्रिलोकी से अभिप्राय कामकला से ही है। रुद्रयामल में कहा है—

नभोमहाविन्दुमुखी चन्द्रसूर्यस्तनद्वया ।
सुमेरुहारवलया शोभमानमहीपदा ॥
पातालतलविन्यासा त्रिलोकीयं तवाम्बिके ।
कामराजकलारूपा जागर्ति सचराचरा ॥

चतुश्शती में भी कहा है—

यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम् ।
वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम् ॥

हरमहिषी पद से आदि शक्ति का ग्रहण करना चाहिए। मन्मथकला से भी अभिप्राय कामकला से ही है। ई में भी तीन विन्दु माने जा सकते है। ईकार के नीचे का भाग हकार का आधा भाग समझा जा सकता है। विन्दु तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। उनमें से एक मुख है और दो स्तन हैं। क्लीं में ककार के विन्दु रूपी मुख के नीचे लकार के दो विन्दुओं को दोनों स्तनों से उपमित करके ईकार रूपी हरार्धाङ्गिनी के योग से बनती है।

इस उपमा से स्त्री मात्र मे साधक का पूज्य मातृभाव जागृत किया गया है। क्योकि सूर्य प्राण रूपी और चन्द्रमा अमृत रूपी दुग्धपान कराकर विश्व का पालन करते हैं—

विद्या समस्तास्तव देवि भेदा स्त्रिय समस्ता सकला जगत्सु।

सूर्य जगत् का प्राण और चन्द्रमा जगत् का मन है। श्रुतियाँ कहती हैं—

प्राण प्रजानामुदेत्येष सूर्य ।

चन्द्रमा मनसो जात ।

हृदय प्राण का और आज्ञा चक्र मन रूपी चन्द्रमा का स्थान है। जो योगी सूर्य को उन्मुख करके सोमामृत का पान करते हैं और दिव्यानन्द का आस्वाद लेते हैं, उनको कामाग्नि का सन्ताप सन्तप्त नहीं करता।

सनत्कुमारसहिता म भी अनेक मदनप्रयोग मिलते हैं।

बिन्दौ तद्वक्त्रमारोप्य तदधो बाहुयुग्मकम्।
तदध कुचयुग्म तु तदधो योनिमेव च॥
एतेषु पञ्चस्थानेषु पञ्चबाणान्विचिन्तयेत्॥

व्याकरण—त्रिलोकी—त्रयाणा लोकाना समाहारस्त्रिलोकी 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगु' इति द्विगुसमास
'द्विगोश्च' इति ङीप्।

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाऽऽधा (सा)रसिरया
॥२०॥

पदयोजना—य [साधक] अङ्गेभ्य किरणनिकुरुम्बामृतरस किरन्ती हिमकरशिलामूर्तिमिव हृदि त्वाम् आधत्ते, स शकुन्ताधिप इव दृष्ट्या सर्पाणा दर्प शमयति। सुधाधारासिरया दृष्ट्या ज्वरप्लुष्टान् सुखयति।

अर्थ—जो साधक अङ्गों से अमृतरस रूपी किरणों के समूह का निकास करती हुई तुमको हृदय मे धारण करता है और तेरा चन्द्रकान्त शिला की मूर्तिवत् हृदय मे ध्यान करता है, वह गरुड के सदृश सर्पों के दर्प का दमन कर

देता है और अपनी सुधा की वर्षा करने वाली नाड़ी के द्वारा दृष्टि मात्र से ज्वरसन्तप्त मनुष्यों को सुख पहुंचाता है।

व्याख्या—गरुड़ पुराण (गारुड़ प्रयोग) में भी कहा जाता है—

> दृष्ट्या सम्मोहयेन्नारीं दृष्ट्यैव हरते विषम्।
> दृष्ट्या चातुर्थिकादींश्च ज्वरान् नाशयते क्षणात्॥

योगी की शाम्भवी मुद्रा में स्थिरीभूता दृष्टि, अवलोकन मात्र से, आज्ञा चक्र की नाड़ी द्वारा कुण्डलिनी के उगले हुए गरलामृत को सींचकर मनुष्यों का ज्वर शान्त कर देती है। शारीरिक ताप के अतिरिक्त संसार सन्ताप भी एक व्यापक ज्वर है जिसके त्रिताप से भी वह योगी शक्तिपात दीक्षा द्वारा मुक्त कर देता है।

> **तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं**
> **निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्।**
> **महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा**
> **महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्॥२१॥**

पदयोजना— तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं निषण्णां षण्णां कमलानामप्युपरि महापद्माटव्यां निषण्णां तव कलां मृदितमलमायेन मनसा पश्यन्तो महान्तः परमाह्लादलहरीं दधति॥

अर्थ—महापुरुष तेरी विद्युत्-रेखा जैसी पतली सूर्य-चन्द्र और अग्नि की त्रिमयी कला को छह कमलों के भी ऊपर कमलों के महावन में मलमाया से विशुद्ध मन द्वारा देखते और परमानन्द की लहर को धारण करते हैं।

व्याख्या—इस श्लोक में अभ्यन्तर आज्ञा चक्र के ऊपर मूर्धागत ज्योति दर्शन का स्वरूप दिखाया गया है। पूर्व श्लोकों में वर्णित ध्यान नीचे के स्तरों के ध्यान हैं। कला से अभिप्राय है चित्स्वरूपा शक्ति और महापद्माटवी से अभिप्राय है सहस्रार।

षट्चक्र का वेध करके कुण्डलिनी शक्ति जब सहस्रार में उठती है, तब उसकी कला बिजली के समान चमकती हुई लकीर के सदृश दिखाई देती है। वह प्रकाश, उष्णता और प्राणशक्ति देने वाले सूर्य अमृतस्राव करने वाले चन्द्र और अग्नि इन तीनों तेजों से युक्त होती है। इस कला का परम

आह्लादकारी रसास्वाद शुद्ध अन्तःकरण ही कर सकते हैं। उक्त कला का वर्णन ब्रह्मविद्योपनिषद् में भी मिलता है—

> शिखा तु दीपसङ्काशा तस्मिन्नुपरि वर्तते।
> अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता॥
> पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखा सा दृश्यते परा।

छहो कमलों अर्थात् छहों के छः अधिदेवता हैं—मूलाधार के ब्रह्मा, स्वाधिष्ठान के विष्णु, मणिपूर के रुद्र, अनाहत के ईश्वर, विशुद्ध के सदाशिव और आज्ञा के परशिव। इनके अरा अथवा दलों की संख्या तत्वों की कला के अनुसार है। अग्नि की १०, सूर्य की १२, चन्द्रमा की १६ कलाएँ क्रमशः मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध के दलों के बराबर हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रत्येक की दस-दस कलाएँ हैं। ईश्वर की ४ और सदाशिव की १६ कलाए हैं। मूलाधार की ४, स्वाधिष्ठान की ६ और आज्ञा की दो शिराओं को भी कला समझा जाए तो सबका योग १०० होता है। यह विवरण स्वामी विष्णुतीर्थ जी ने दिया है।

> भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
> मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
> तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं —
> मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥२२॥

पदयोजना—[हे] भवानि! त्वं दासे मयि सकरुणां दृष्टिं वितर स्तोतुं वाञ्छन् भवानि त्वमिति यः कथयति तस्मै तदैव त्वं मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुट-नीराजितपदां निजसायुज्यपदवीं दिशसि॥

अर्थ—'हे भवानि! तू मुझ दास पर भी अपनी करुणामयी दृष्टि डाल',—इस प्रकार कोई मुमुक्षु स्तुति करते समय 'भवानि त्वं' (मैं तू हो जाऊँ) इस पद का ही उच्चारण कर पाता है कि उसी समय तू उसे निज सायुज्यपद प्रदान कर देती है, जिस पद की ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र भी अपने मुकुटों के प्रकाश से आरती उतारा करते हैं।

व्याख्या—इस श्लोक में प्रेमरूपा भक्ति की उत्कृष्टता दिखाई गई है जिससे भगवती के अनुग्रह मात्र से सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति अविलम्ब हो जाती है। गीता में कहा भी है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

सायुज्य मोक्ष अन्य सालोक, सामीप्य और सारूप्य मोक्षों से ऊँचा है। सायुज्य मोक्ष को दर्शनसिद्धान्त ने इस प्रकार अङ्गीकृत किया है।

कर्मणामात्मलाभान्न परं विद्यते—आपस्तम्बः
अविद्याध्वंसो मोक्षः— शङ्करः
नित्यनिरतिशयसुखाभिव्यक्तिः—मीमांसकाः
गुणपुरुषान्यताख्यातिः—साङ्ख्याः
नित्ययोगशक्तिनिभालनानितरानन्दानुभूतिः—पातञ्जलाः
आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य मोक्षः— तार्किकाः
निर्विषयबुद्धिसन्तानधारावलोकनम्—बौद्धाः
नित्योर्ध्वगमनम्—जैनाः
मरणमेव मोक्षः—चार्वाकाः
नित्यनादानुसन्धानेन .. निरन्तरोङ्कारशब्दोच्चारणान्नादब्रह्मणि लयः—ब्रह्मवादिनः

ब्रह्मात्मैक्य की उपलब्धि श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा कालान्तर में होती है। परन्तु इस श्लोक में यह कहा गया है कि जाने अथवा अनजाने भगवती की स्तुति करते समय जो कोई 'भवानि त्वं' इतने ही पद का उच्चारण मात्र कर पाता है तब भगवती उसे सायुज्य मोक्ष दे देती है।

व्याकरण—भवानि—इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्र............
इत्यादिना आनुक् ङीप् च
मयि— चतुर्थ्यर्थे सप्तमी

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा
शरीरार्द्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत् ।
यदेतत् (तथाहि) त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटम् ॥२३॥

पदयोजना—शम्भोर्वामं वपुः त्वया हृत्वा अपरितृप्तेन मनसा अपरमपि शरीरार्धं हृतमभूदिति शङ्के, यत् एतत् त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटम् ॥

अर्थ—शम्भु का वामाङ्ग हरण करके भी तेरा मन तृप्त नहीं हुआ। मुझे शङ्का होती है कि दूसरे आधे शरीर का भी अपहरण कर लिया गया है। क्योंकि वह सारा शरीर अरुण वर्ण की आभा से तेरा ही दीख पड़ता है, उसमें तीन नेत्र हैं, वह कुचों के भार से कुछ झुका हुआ है और द्वितीया का चन्द्र केशों के ऊपर मुकुट पर शोभा दे रहा है।

व्याख्या—यहां अर्धनारीश्वर का ध्यान दिखाया गया है जिसमें शक्ति तत्त्व की इतनी प्रधानता है कि शिवतत्त्व को जानना कठिन हो गया है। वास्तव में शक्ति तत्त्व शिवतत्त्व से भिन्न नहीं है।

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या रहितः शिवः।
सामरस्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव॥
परस्परस्थितौ सम्यक्फलदौ च परस्परम्।
प्रपञ्चमातापितरौ प्राञ्चौ जायापती स्तुम॥

महार्थमञ्जरी में भी यही कहा गया है—

'आलेख्यविशेष इव गजवृषभयोर्द्वयोः।

प्रतिभासो यथा तथा एकस्मिन्नपि परमार्थे शिवशक्तिकल्पना कुर्म' इति

शङ्कर का शरीर स्फटिक सदृश स्वच्छ है जो भगवती का शरीर अरुण होने के कारण, उसकी अरुण आभा से अरुण दीखने लगता है।

'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्'
हिरण्यरूपः स हिरण्यसदृग्'
'असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः'

—श्रुति

सदाख्य तत्त्व प्रभवोन्मुख होने के कारण पूर्ण शक्तियुक्त होता है, इसलिए अहमविमर्श के अध्यात्मभाव को शक्ति ने मानो दबा रखा है।

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशः स्थगयति (स्थिरयति)।
सदा पूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः॥२४॥

पदयोजना—धाता जगत् सूते। हरिः जगत् अवति। रुद्रः जगत् क्षपयते। ईशः एतत् तिरस्कुर्वन् स्वमपि वपुः तिरयति। सदापूर्वः शिवः सर्व तदिदं तव क्षणचलितयोः भ्रूलतिकयोः आज्ञामालम्ब्य अनुगृह्णाति।

अर्थ—ब्रह्मा जगत् की रचना करते हैं, हरि पालन और रुद्र संहार करते हैं। ईश्वर सबका तिरस्कार करके अपने को स्थित रखते हैं और शिव, जिनके नाम के पूर्व 'सदा' लगा हुआ है अर्थात् सदाशिव इन सबको लीन कर लेते हैं अथवा तेरे क्षणचपल भ्रूलताओं की आज्ञा का आलम्ब होकर सब पर अनुग्रह करते रहते हैं।

व्याख्या—ब्रह्मा और विष्णु के साथ रुद्र भी लयाभिमुख होकर महेश्वर—तत्त्व में लीन हो जाते हैं। और महेश्वर भी बीज रूप सदाशिव में लीन हो जाते हैं। परन्तु विश्व का प्रलय हो जाने पर भी प्रभव की बीज शक्ति सदाशिव में बनी रहती है। प्रलय काल के समाप्त होने पर सदाशिव मानों भगवती की आज्ञानुसार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और महेश्वर सब पर अनुग्रह करके नया जीवन प्रदान करते हैं।

शाम्भवदीपिका में कहा है—

> "सृष्टिस्थित्युपसंहारनिरोधानुग्रहात्मकम्।
> कल्पं पञ्चविधं यस्मात्तं नुमः शाश्वतं शिवम्॥

भगवती सबकी अधिष्ठात्री है क्योंकि प्रभव और प्रलय दोनों शक्ति के ही कार्य है। शक्ति का प्रभुत्व इतना है कि वह सदाशिव भी विवश होकर सृष्टि करने को वाध्य होता है।

> प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
> भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥
>
> गीता ९.८

२५.

> त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे
> भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।
> तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे
> स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः॥२५॥

पदयोजना—तव त्रिगुणजनितानां त्रयाणामपि देवानां तव चरणयोः

या पूजा विरचिता भवेत् सैव पूजा। तथा त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे हि यस्मात् मुकुलितकरोत्तसमुकुटा शश्वदेते स्थिता ॥

अर्थ—तेरे तीनो गुणो से उत्पन्न इन तीनो देवताओं का तेरे चरणो की पूजा से ही पूजन हो जाता है। इसलिए ये तीनो देव तेरे चरणो को धारण करने वाले मणियो के बने आसन के निकट अपने मुकुटो की शोभा बढाने के लिए हाथ जोडे खडे रहते हैं।

व्याख्या—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और महेश्वर की पृथक्-पृथक पूजा करने की आवश्यकता नही है। भगवती के पूजन से ही सबका पूजन हो जाता है देवीपुराण मे कहा है—

"विष्णुपूजासहस्राणि शिवपूजाशतानि च।
अम्बिकाचरणार्चाया कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥"

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्।
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि संमीलित दृशा
महासंहारेऽस्मिन्विहरति सति त्वत्पतिरसौ ॥२६॥

P B

पदयोजना—विरिञ्चि पञ्चत्व व्रजति। हरि विरतिम् आप्नोति। कीनाश विनाश भजति। धनद निधन याति। माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलित-दृशा वितन्द्री। अस्मिन् महासहारे सति असौ त्वत्पति हर विहरति ॥

अर्थ—हे सती! इस महाप्रलय के समय ब्रह्मा पाँचवी अवस्था को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मर जाता है। हरि विरति को प्राप्त होते है। यमराज का नाश हो जाता है। कुबेर का निधन हो जाता है। जिसको कभी निद्रा नही आती, वह हजार नेत्र वाला महेन्द्र भी आँखें बन्द कर लेता है। तेरा पति शिव तो सदा विहार करता रहता है।

व्याख्या—ब्रह्माण्डभङ्ग के समय मे सभी अधिकारी पुरुषों का सहार होने पर तुम्हारा पति विहरण करता है। सतियो के सतीत्व की इतनी महानता है कि उनका सौभाग्य सदा अखण्ड रहता है और सदाशिव तब भी बने रहते हैं। क्योकि सदाख्य तत्त्व मे विश्व का बीज रहता है और बीज अक्षय है। वेद मे कहा है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयद् दिवञ्च पृथ्वी चान्तरिक्षमथो स्व ।

सांख्य में भी परब्रह्म का नित्यसिद्धत्व प्रतिपादित किया गया है—

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रैगुण्यविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥२७॥

पदयोजना - आत्मार्पणदृशा जपः, जल्पः, सकलमपि शिल्पं मुद्राविरचनं, गतिः प्रादक्षिण्यभ्रमणम्, अशनादि आहुतिविधिः संवेशः प्रणामः अखिलं सुखं मे यद्विलसितं तव सपर्यापर्यायः भवतु ॥

अर्थ—बोलना मन्त्रों के जप सदृश, कर्मकाण्ड सब मुद्राओं की विरचना के सदृश, चलना-फिरना प्रदक्षिणा के सदृश, खाना-पीना आहुति के समान, सोना प्रणाम सदृश, सब सुखों के उपभोग में आत्मसमर्पण की दृष्टि अर्थात् जो भी मेरा विलास है, सब तेरी पूजा पद्धति का क्रम है ।

व्याख्या—पूजन तीन प्रकार का होता है—अपरा पूजा, पराऽपरा पूजा और परा पूजा । मूर्ति, यन्त्र इत्यादि द्वारा वाह्य भावनायुक्त पूजन को अपरा पूजा कहते हैं ।

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत् ॥

अन्तर्भावनायुक्त ध्यानादि अन्तर्यागों के साधन को पराऽपरा पूजा कहते हैं । अद्वैत ब्रह्म भावना ही परा पूजा है ।

इसी पूजन को अल्पसार और महासार भी कह सकते हैं ।

अल्पसारा फल्गुप्रयोजना पुनः कर्मबन्धमालिन्यजननी ।

महासारा तु मनोभावनिवेदितापरिमिताविच्छिन्नतत्स्वरूपभावना पूजा ।

योगी ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने के पश्चात् परा पूजा या महासार पूजा का अधिकारी बनता है । सौन्दर्यलहरी पूर्व श्लोकों में भगवती की अपरा

श्रौर पराऽपरा पूजा का वर्णन था। इस श्लोक में परा पूजा का वर्णन है। श्रौर यहां ज्ञानयोग का लक्षण दिखाया गया है।

स्फोटात्मक शब्दों के सार्थक एवं निरर्थक क्रम को जल्प कहते हैं। वर्ण-माला के अक्षरों के उच्चारण को एकाक्षरी मन्त्र कहा जाता है। सभी पद मन्त्रों के समान है। इसलिए सब जल्प जप तुल्य है।।

तेरी कृपा से ही स्वेच्छा जल्प होना है—

गेहं नाकति गर्वितं प्रणमति स्त्रीसङ्गमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं गुणयति त्वत्पादसंसेवनात्
तां वन्दे भवभीतिभञ्जनकरीं गौरीं महासुन्दरीम्।।

विविध कर्मों के करने के लिए जो भी क्रियाएँ हाथ करते हैं वे सब पूजन में हाथों के अभिनयों से की गई मुद्राओं के समान हैं। भगवती सर्वत्र विराजमान है इसलिए चलते फिरते समय उसकी प्रदक्षिणा होती रहती है। जठराग्नि भी शक्ति का ही रूप है। वह अन्न पचाकर आत्मा को बलि पहुंचाती है। हवन की अग्नि का कार्य भी हव्य को देवता तक पहुंचाना है। खाना पीना सब आहुति देना है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।
गीता १५ १४

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।।
दुर्गा सप्तशती ५ २६

सोते-लेटते शरीर का भूशायी होना भगवती का साष्टाङ्ग प्रणाम के समान है। इसलिए हमारी विविध चेष्टाएँ निरन्तर भगवती का ही पूजन किया करती हैं।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः।
करालं यत्क्ष्वेलं [(डं) कवलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा।।२८।।

पदयोजना—विश्वे विधिशतमखाद्याः दिविषदः प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं सुधाम् आस्वाद्यापि विपद्यन्ते। करालं क्ष्वेलं (विष) कवलितवतः शम्भोः कालकलना नास्तीति यत तन्मूलं तव ताटङ्कमहिमा ॥

अर्थ—ब्रह्मा और शतमुख अर्थात् इन्द्रादि देवगण जरामृत्यु का हरण करने वाली सुधा को पीकर भी इस विश्व में काल के शिकार होते हैं और कराल हलाहल विष का पान करने वाले शम्भु पर काल की कलना नहीं चलती। इसका कारण, हे जननि! तेरे कर्णफूलों की महिमा है।

व्याख्या—ताटङ्क कर्णाभरण विशेष है। देश देश में वह स्त्रियों के वैधव्य का सूचक है।

"कर्णाटकदेशादौ ताटङ्करूपं द्रविडदेशादौ माङ्गल्यसूचकं गौडदेशादौ शङ्खवलयसिन्दूरादिकं, पश्चिमदेशादौ वाऽऽरकूटसौवर्णकङ्कणादि तेष्वेकं सधवाभरणं ताटङ्कमात्रोपात्तम् ॥ विधवा स्त्रियाँ इनको उतार देती हैं।

शङ्कर हलाहल पीकर भी अमर हैं और देवता अमृत पीकर भी मर जाते हैं। इसका कारण भगवती का अनादि, अनन्त, अखण्ड सुहाग है। यह भगवती के सतीत्व का माहात्म्य है कि वह नित्य है और उसका सुहाग नित्य है।

व्याकरण—कलना—

'ण्यासश्रन्थो युजि'ति युच्। "अजाद्यतष्टाप्"

किरीटं वैरिञ्च्यं परिहर पुरः कैटभभिदः
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटम्।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ॥२९॥

पदयोजना—एतेषु प्रणम्रेषु [सत्सु] भवनमुपयातस्य भवस्य प्रसभं तवाभ्युत्थाने परिजनोक्तिर्विजयते—पुरः वैरिञ्च्यं किरीटं परिहर, कैटभभिदः कठोरे कोटीरे स्खलसि, जम्भारिमुकुटं जहि।

अर्थ—शङ्कर को अकस्मात अपने भवन में आते देखकर खड़ी होकर स्वागतार्थ आगे बढ़ने पर तेरी परिचारिकाओं की इन उक्तियों की जय हो—

'सामने ब्रह्मा के मुकुट से बचे, कैटभ को मारने वाले विष्णु के कठोर मुकुट से ठोकर लगेगी, जम्भारि इन्द्र के मुकुट से बच कर चल।

व्याख्या—विष्णु भगवान् को कैटभारि और मधुसूदन भी कहते है क्योंकि मधु और कैटभ दो राक्षस उनके मेल से उत्पन्न हो गए थे। जब वे ब्रह्मा जी को खाने के लिए दौडे तो ब्रह्मा जी ने भगवान को शेषशय्या पर सोते देखकर भगवती की प्रार्थना की। महामाया ने भगवान् को जगा दिया। दोनो राक्षसो का वध करके कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा जी को भय से मुक्त किया। आध्यात्मिक पक्ष मे ज्ञान के ऊपर आवरण डालने वाले भ्रान्ति विक्षेपादि को कैटभ कह सकते हैं। कान के मैल को भी कीट कह सकते हैं। कीट का अर्थ क्रीडा भी होता है।

परिचारिकाओ से विभिन्न चक्रो की योगिनियां का अभिप्राय हो सकता है। जागते हुए शङ्कर से मिलने की आतुरता मे शक्ति के सहस्रार मे चढते समय नीचे के चक्रो पर प्रणाम करते हुए ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र के मुकुटों से लगने की आशङ्का सूचक परिचारिकाओ की उपरोक्त उक्तियाँ स्वाभाविक ही हैं। मूलाधार मे ब्रह्मा का स्थान है। पृथिवी तत्त्व का स्वामी इन्द्र है। स्वाधिष्ठान मे विष्णु का स्थान है। साधक की शक्ति कुण्डलिनी तक पहुचने के लिए इन मण्डलो पर रुकनी चाहिए।

व्याकरण—जहि —यहां जहि धातुशब्द 'जहीहि' अर्थ म प्रयुक्त किया गया है। इसमे धातु 'हा' है इसम √हन् नही है और इसे लोट लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप नही समझना चाहिए अन्यथा अर्थ गलत हो जाएगा।

अलङ्कार—यहां उदात्त अलङ्कार है।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाऽऽद्याभिरभितो
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥30॥

PB आरती की विधि

पदयोजना—हे निषव्ये! हे नित्ये! स्वदेहोद्भूताभि घृणिभि अणिमाद्याभि अभितोऽवस्थिताभि परिवृता त्वा यः साधक अहमिति सदा भावयति,

त्रिनयनसमृद्धि तृणयतः तस्य महासंवर्ताग्निः नीराजनविधि विरचयतीत्यत्र किमाश्चर्यम् ?

अर्थ—हे सेवा करने के योग्य, वरेण्य, नित्य, अपने देह से निकलने वाली अणिमादिक सिद्धियों रूपी किरणों से घिरा हुआ तेरा भक्त जो 'त्वां अहम्' अर्थात् तुझको अपना ही रूप मानकर सदा भावना करता है, त्रिनयन की समृद्धि को भी तृणवत् तुच्छ समझने वाले उस साधक की संवर्ताग्नि आरती उतारता है—इसमें क्या आश्चर्य है।

व्याख्या—'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति'। वह प्रलय में भी क्षोभ नहीं पाता, मानो संवर्ताग्नि का जलना उसकी आरती उतारने के सदृश है। वह योगी सर्वाशा परिपूरक षोडशार चक्रस्थ कामाकर्षिणी आदि १६ नित्य कलाओं को जीतकर नित्य मोक्ष पद की प्राप्ति की इच्छा रखता है क्योंकि भगवती की आराधना का फल ब्रह्मात्मैक्य की अपरोक्षानुभूति का उदय होना ही है।

'सर्वकर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।'

आठ सिद्धियाँ हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, वशित्व, ईशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति और सर्वकामप्रदायिनी।

व्याकरण—त्रिनयन—त्रीणि नयनानि मार्गाः प्रापकाः सूर्यचन्द्राग्निरूपाः यस्य दर्शनायेति स त्रिनयनः।

यद्वा—इडापिङ्गलासुषुम्नामार्गाः त्रयः तद्दर्शने उपाया इति त्रिनयनः सदाशिवः।

यद्वा—त्रीणि नयनानि चक्षूंषि यस्य स त्रिनयनः।

> चतुःषष्ट्यातन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं
> स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
> पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
> स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥३१॥

पदयोजना—पशुपतिः सकलं भुवनं तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः अतिसन्धाय स्थितः। पुनस्त्वन्निर्बन्धाद् अखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं ते तन्त्रमिदं क्षितितलमवातीतरत् ॥

अर्थ—पशुपति शङ्कर ने ६४ तन्त्रों से सारा भुवन को भरकर जो अपनी अपनी उन सिद्धियों को देने वाले हैं जो प्रत्येक का अपना विषय है फिर तत्पश्चात् तेरे आग्रह से सब पुरुषार्थों की सिद्धि देने वाले तेरे स्वतन्त्र तन्त्र को भूतल पर उतारा।

व्याख्या—इस श्लोक में ६४ तन्त्रों का उल्लेख है। सौन्दर्यलहरी नामक तन्त्र इन ६४ तन्त्रों से भिन्न है क्योंकि ६४ तन्त्र मोक्ष के साथ त्रिवर्गफल के कारण ग्रन्थ सब तन्त्रों की अपेक्षा नहीं रखता। इस तन्त्र में श्रीविद्या का रहस्य बताया गया है। यह महाविद्या है। इस विषय पर चन्द्रकला ज्योतिष्मती कलानिधि कुलार्णव कुलेश्वरी भुवनेश्वरी बार्हस्पत्य और दुर्वासामत मुख्य ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार समयाचार पर वशिष्ठ सनक सनन्दन सनत्कुमार और शुकदेव जी विरचित शुभाशुभपञ्चक भी हैं।

६४ तन्त्र—(१) मायाप्रपञ्चनिर्माणफलदायि महामायाशम्बरतन्त्र।

(२) योगिनीनां जालदर्शन योगिनीजालशम्बरम्

(३) तत्त्वानां पृथिव्यादीनाम् अन्योन्य प्रति भासनम् यस्मिन् तद् शम्बरम्

४+८ भैरवाष्टकम्—

सिद्ध भैरव[१] वटुकभैरव[२] कङ्कालभैरव[३] कालभैरव[४] कालाग्निभैरव[५] योगिनीभैरव[६], महाभैरव[७] शक्तिभैरव[८]

८ बहुरूपाष्टकम्—शक्ति से समुद्भूतरूप आठ हैं

(१) ब्राह्मी [२]माहेश्वरी [३]कौमारी [४]वैष्णवी [५]वाराही [६]माहेन्द्री [७]चामुण्डा [८]शिवदूती।

८ यमलाष्टकम्—कामसिद्धान्त प्रतिपादित तन्त्र ८ यमल हैं।

(१) ब्रह्मयामल	(२) विष्णुयामल
(३) रुद्रयामल	(४) लक्ष्मीयामल
(५) उमायामल	(६) स्कन्दयामल
(७) गणेशयामल	(८) जयद्रथयामल

२८ षोडशनित्यप्रतिपादन विद्याचन्द्रज्ञानम्।

२९ समुद्रयानोपायहेतु मालिनीविद्या

३०. जाग्रतामपि निद्राहेतुः महासम्मोहनम्
३१. वामजुष्ट।
३२. महादेव।
३३. वातुल।
३४. वातुलोत्तर।
३५. कामिक।
३६. षट्कमलभेदसहस्रारं हृद्भेदतन्त्रम्
३७. तन्त्रभेद
३८. गुह्यतन्त्र
३९. चन्द्रकलानां वादः प्रतिपादनं यस्मिन् तन्त्रे कलावादं वात्स्यायनादिकम्।
४०. वर्णोत्कर्षविधिर्यत्र प्रवर्तते तत् कलासारम्।
४१. घुटिकासिद्धिहेतुः कुण्डिकामतम्।
४२. मतोत्तर।
४३. वीणाख्य—सम्भोगयक्षिणीतन्त्रम्।
४४. श्रोतल—घुटिकाञ्जनपादुकासिद्धिः।
४५. श्रोतलोत्तर—चतुष्पष्टिसहस्रसङ्ख्याकयक्षिणीनां दर्शनम्।
४६. पञ्चामृत—आयुर्दीर्घविज्ञानम्।

४७. रूपभेद
४८. भूतडामर
४९. कुलसार
५०. कुलोड्डीश
५१. कुलचूडामणि

} मारणहेतुयुक्तं तन्त्रम्

५२. सर्वज्ञानोत्तर
५३. महाकालीमत
५४. अरुणेश
५५. मोदिनी ईश
५६. विकुण्ठेश्वर

} कापालिकसिद्धान्तैकदेशिदिगम्बरमतम्

५७. पूर्व आम्नाय
५८. पश्चिम आम्नाय
५९. दक्षिण आम्नाय
६०. उत्तर आम्नाय
६१. निरुत्तर आम्नाय
६२. विमल
६३. विमलोत्तर
६४. देवीमत

} क्षपणकानां तन्त्रः

अवातीतरत्— णिश्रिद्रुस्रुभ्य कर्तरि चङ्" इति चङि कृते, "चङि" इति द्वित्वे च कृते 'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे" इति सन्वद्भावे कृते, "सन्यत" इतीत्वे कृते, दीर्घो" इति दीर्घे च कृते, "इतश्च" इति तिप इकारलोपे अतीतरदिति लुङि रूपम् ।

> शिव: शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
> स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ।
> अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
> भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥३२॥

पदयोजना—[हे जननि !] शिव शक्ति काम क्षिति अथ रवि शीत-किरण स्मर हस शक्र तदनु च परामारहरय इत्येते वर्णा तिसृभि हृल्लेखाभि अवसानेषु घटिता ते वर्णा तव नामावयवता भजन्ते ॥

अर्थ—[हे जननि !] शिव, शक्ति काम, क्षिति और फिर रवि, शीत किरण (चन्द्र), स्मर (काम), हस, चक्र, इसके पीछे परा (शक्ति), मार (काम), हरि,—इन तीनो के अन्त मे ३ हृल्लेखा जोडकर तेरे नाम के अवयव स्वरूप अक्षरो का साधकजन भजन करते है ।

व्याख्या—यह हादि लोपामुद्रा का मन्त्र बताया गया है। इसके १५ अक्षर हैं। षोडशी का १६वां अक्षर गुरुमुख से जानना चाहिए।

> दर्शाद्या पूर्णिमान्ताश्च कला पञ्चदशैव तु ।
> षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी ॥

१५ कलाओं के नाम हैं—

दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी।

मन्त्र के चार पाद होते हैं। प्रथम तीन पाद वाग्भव कूट, कामकला कूट और शक्तिकूट के नामो से प्रसिद्ध हैं। चौथा पाद श्रीकूट है। प्रथम तीन पादो को अग्नि, सूर्य और चन्द्र, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा की क्रमश ज्ञान, क्रिया और इच्छा शक्तियाँ, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति के अनुरूप विश्व, तैजस

और प्राज्ञः, सत्त्व, रजस् और तमस् समझना चाहिए। चौथा पाद तुरीय पाद है। वाह्य उपासना में ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग इत्यादि की आवश्यकता रहती है, परन्तु अन्तर्याग में केवल आत्मतत्त्व पर ही लक्ष्य रहता है।

शिव शक्ति काम और क्षिति—आग्नेय खण्ड है। रवि शीतकिरण स्मर हंस शक्र—सौर खण्ड है। परा मार हर—सौम्य खण्ड है।

तुरीयमेकाक्षर—चन्द्रकला खण्ड है।

'त्रिखण्डो मातृकामन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः।'

चन्द्रकला खण्ड गुरुमुख से ही जानना चाहिए, इसलिए उसे यहाँ नहीं वताया गया है।

सच्छिष्यायोपदेष्टव्या गुरुभक्ताय सा कला'

सोलहवीं कला के अधीन ही अन्य कलायें घटती वढ़ती हैं। परन्तु यह कला वृद्धिह्लास रहता है। इसलिए इस विद्या का नाम श्रीविद्या है। शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियाँ, पूर्णिमा और अमावस्या सहित १६ चन्द्र कलायें कहलाती हैं और कृष्णपक्ष में सूर्य में ही अस्त हो जाती हैं।

ज्योतिश्शास्त्र में कहा भी है—

प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः॥

अमावास्या को पूर्णिमा की कला अस्त हो जाने पर, जो चन्द्रकला रहती है वही १६वीं नित्या कला है। चन्द्रमा का वही वास्तविक विम्व प्रत्येक कला में सूर्य के प्रकाश से घटती वढ़ती कलाओं के रूप में चमका करता है।

१६ कलाओं के नाम हैं—

त्रिपुरसुन्दरी कला, कामेश्वरी कला, भगमालिनी कला, नित्यक्लिन्ना कना, भेरुण्डाख्या कला, वह्निवासिनी कला, महाव्रजेश्वरी या महाविद्येश्वरी कला, रौद्रीकला, त्वरिता कला, कुलसुन्दरी कला, नीलपताका कला, विजया कला, सर्वमङ्गला कला, ज्वाला कला, मालिनी कला, चिद्रूपा कला।

षोडशी कला की वेदो मे मधुकरी से उपमा दी जाती है।

इय वाव सरघा।
तस्या अग्निरेव सारघ मधु।
ता मधुकृते।
मधुवृण

सरघा मधुमक्खी को कहते हैं। ये रात को अमृत का निर्माण करती हैं। इसलिए श्री के उपासक भी शुक्ल पक्ष की रात्रियो मे ही कुण्डलिनी जागरण करते हैं।

शुक्लपक्ष के दिनों के नाम

सज्ञान विज्ञान प्रज्ञान जानद अभिजनत्। सङ्कल्पमान प्रकल्पमानम् उपकल्पमानम् उपक्लृप्तम्। क्लृप्तम् श्रेयो वसीय आयत् सम्भूत भूतम्॥

कृष्णपक्ष के दिनों के नाम—

प्रस्तुत विष्टुत सस्तुत कल्याण विश्वरूपम्। शुक्रम् अमृत तेजस्वि तेज समिद्धम्। अरुण भानुमत् मरीचिमत् अभितपत् तपस्वत्।

कुण्डलिनी के सहस्रार मे चढते समय वह मानस चन्द्रमण्डल मे छिद्र कर देती हैं जिससे वहाँ पर चन्द्रमा की सब कलाएँ अमृत टपकने के कारण नित्य चमकने लगती हैं। इसलिए इनका नाम नित्या कहलाने लगता है। ये कलायें फिर विशुद्ध चक्र पर उतर कर उसकी १६ पखुडियो पर प्रकाशमान हो जाती हैं। मानस चन्द्रमण्डल को वैन्दव स्थान कहते हैं। यह शुद्ध चितिशक्ति की आनन्दमयी कला का स्थान है जिसको श्री अथवा महात्रिपुर सुन्दरी कहते हैं।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो
निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिका ।
भजन्ति त्वा चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षव(र)लया
शिवाऽग्नौ जुह्वन्त· सुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतं ॥३३॥

पदयोजना—[हे नित्ये!] तव मनो आदौ स्मर योनिं लक्ष्मीम् इद त्रितम निधाय निरवधि महाभोगरसिका एके चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलया शिवाग्नौ त्वा सुरभिघृतधाराहुतिशतं जुह्वन्त भजन्ति॥

अर्थ—[हे नित्ये !] स्मर (काम), योनि (त्रिकोण), लक्ष्मी इन तीनों को तेरे मन्त्र के आदि (अक्षरों के स्थान) पर रखकर निरवधि महाभाग के रसिक तेरे कुछ भक्त चिन्तामणियों की गुंथी हुई अक्षमाला पर तेरा भजन करते हैं और शिवा (त्रिकोण) अग्नि—हवन-कुण्ड में सुरभि (गाय) के घी की सैंकड़ों धाराओं की आहुतियाँ देते हैं।

व्याख्या—यह कादि मूल विद्या का मन्त्र है। इसमें भी पञ्चदशी का रूप है।

'एके' पद के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि अन्य मतावलम्बी साधकजन कभी समाप्त न होने वाली भोगों की इच्छा से सकाम अनुष्ठान करते हैं, वे इसी मन्त्र की उपासना करते हैं और जप के पश्चात् आहुति भी देते हैं। लेकिन शङ्कर भगवत्पाद आनन्द लहरी के ३२वें श्लोक के उपासक थे क्योंकि वे एक सन्यासी थे और उन्होंने सभी इच्छाओं का परित्याग किया हुआ था।

मन्त्र—मननात् त्रायते इति मन्त्रम् ।

योगशिखोपनिषद् में शिवजी ब्रह्मा जी से कहते हैं—

"मननात् प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् ।
मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन् मदधिष्ठानतोपि वा ॥

मन्त्र के जप से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। शक्ति का जागरण होने पर मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग–चारों का विकास होता है।

योगशिखोपनिषद् में भी कहा है—

मन्त्रो लयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिका क्रमात् ।
एक एव चतुर्धायं महायोगोऽभिधीयते ॥

माला—माला की संस्कार-विधि अक्षमालोपनिषद् में दी गई है। माला को गन्ध और पञ्चगव्य से स्नान कराकर, अष्ट गन्ध से लेपकर, अक्षत-पुष्पादि से पूजन करके, अ से क्ष पर्यन्त चिन्तामणियों की अक्षमालोपनिषद् में कहे गए मन्त्रों से भावना युक्त प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं
तवात्मानं मन्ये भगवति नवा (भवा) त्मानमनघम् ।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः ॥३४॥

पदयोजना—*[हे भगवति !] शशिमिहिरवक्षोरुहयुग शरीर शम्भो-स्त्वमेव । तवात्मानमनघ नवात्मान मन्ये । अत शेष शेषी इत्यय सम्बन्ध समरसपरानन्दपरयो वाम् उभयसाधारणतया स्थित ॥*

अर्थ—[हे भगवती !] मैं ऐसा समझता हू कि तू शम्भु का शरीर है जिसके वक्षस्थल पर सूर्य और चन्द्र दो स्तन उभरे हुए है और तेरी आत्मा सारे भव की आत्मा शङ्कर अथवा नवात्मा शङ्कर है। इसलिए तुम दोनो मे पराशक्ति और आनन्द का एक समरस होने के कारण, शेष और शेषीवत् सम्बन्ध स्थित है।

व्याख्या—वेदो और पुराणो मे सूर्य और चन्द्रमा को विराट् भगवान् के नेत्र माना गया है। परन्तु यहां उन्हे प्रकृति के दोनों स्तनो से भी उपमित किया गया है।

सूर्यचन्द्रौ स्तनौ देव्या तावेव नयने स्मृतौ ।
उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकी श्रुति ॥

सूर्य से विश्व का प्राणशक्ति प्राप्त होती है और चन्द्रमा से सोमरस। आध्यात्मिक स्तर पर भी सूर्य हृदय मे रहकर और चन्द्र मस्तिष्क मे रहकर रक्षा करते है।

यहां शिव और शक्ति का आधार आधेय सम्बन्ध दिखाया गया है। यदि पर पद शिव है तो आनन्द पद को शक्ति का रूप समझना चाहिए। दोनो भाव समरसवत् एक ही हैं—जैसे शक्कर और मिठास।

भगवति—उत्पत्त्यादिवेदन भग तद्वती भगवती।

उत्पत्ति च विनाश च भूतानामागति गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्या च स वाच्यो भगवानिति ॥

नवात्म का अर्थ शङ्कर है।
शिव, शक्ति और श्रीचक्र तीनो ९ व्यूहात्मक हैं।

शिव के व्यूह—

कालव्यूह—निमेषादिकल्पान्तावच्छिन्नकालसमुदायः कालव्यूहः ।
कुलव्यूह—नीलादिरूपव्यूहः ।
नामव्यूह—संज्ञास्कन्धः ।
ज्ञानव्यूह—विज्ञानस्कन्धः ।
चित्तव्यूह—अहङ्कारपञ्चकस्कन्धः ।
नादव्यूह—रागेच्छाकृतिप्रयत्नस्कन्धः ।
बिन्दुव्यूह—षट्चक्रसङ्घः ।
कालव्यूह—पञ्चाशत्कलानां वर्णात्मिकानां सङ्घः ।
जीवव्यूह—भोक्तृस्कन्धः ।

शक्ति के व्यूह—

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ति और परा ।

श्रीचक्र के व्यूह—४ श्रीकाण्ड और ५ शिवयुवतियां ।

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे ॥३५॥

पदयोजना—[हे शिवयुवति !] मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि त्वमापस्त्वं भूमिः । त्वयि परिणतायां परं न हि । त्वमेव स्वात्मानं विश्ववपुषा परिणमयितुं भावेन चिदानन्दाकारं बिभृषे ।

अर्थ—[शिवयुवति !] तू मन है, तू आकाश है, तू वायु है और वायु जिसका सारथि है—वह अग्नि भी तू है । तू जल है और तू भूमि है, तेरी परिणति के बाहर कुछ भी नहीं है । तूने ही अपने आपको परिणत करने के लिए चिदानन्दाकार को विराट् देह के भाव द्वारा व्यक्त किया हुआ है ।

व्याख्या—मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी सत् शक्ति के विकार हैं । इनसे आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और आधार चक्रों से सम्बन्धित तत्त्वों के अधिदेवताओं का सङ्केत है ।

ब्रह्म सत् स्वरूप है। श्रुति कहती है सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा-द्वितीयम्। उसने इच्छा की (तदैक्षत) कि सृष्टि के लिए मैं अनेक हो जाऊं।

एकोऽस्मि बहु स्यां प्रजायेय

सृष्टि के पूर्व यह एक ही अद्वितीय था। वह स्वयं ही तेज, जल, अन्न आदि अनेक रूपों मे परिणत हो गया।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

अद्वितीय होने के कारण दूसरा कुछ न था।

तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास।

५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार का अन्तःकरणचतुष्टय—सभी सद् शक्ति के परिणाम हैं जो चिति शक्ति के प्रकाश से चेतन और अचेतन दिखाई देते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया भेद से वह परा शक्ति त्रिधा दिखाई पडती है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्

त्वयि परिणतायाम् इस उक्ति से निर्विकारात्मक परिणाम कहा गया है। कहा भी है—

शृणु देवि महाज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमं प्रियं।
यत् विज्ञानमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति॥
त्रिगुणा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरि।
स्थूलसूक्ष्मविभागेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका॥
कवलीकृतनिःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
यस्यां परिणतायां तु न किञ्चित्परमिष्यते॥

व्याकरण—शिवयुवति—युवतिशब्दात् 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके' इति ङीप्। तस्यास्तस्तुद्धि।

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोके लोके निवसति हि भालोकभुवने॥३६॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं परं शम्भुं परचिता परिमिलितपार्श्वं वन्दे । यं भक्त्या आराध्यन् रविशशिशुचीनाम् अविषये निरालोके भालोकभुवने निवसति हि ॥

अर्थ—तेरे आज्ञा चक्र में स्थित करोड़ों सूर्य चन्द्र के तेज से युक्त पर-शिव की वन्दना करता हूं जिसका वाम पार्श्व पराचिति से एकीभूत है। उसकी जो मनुष्य भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं, वे उससे प्रकाशमान लोक में निवास करते है जो सूर्य, चन्द्र और अग्नि का विषय नहीं है अथवा सब आतङ्कों से मुक्त है अथवा सूर्य, चन्द्र और अग्नि का विषय न होने के कारण उनके प्रकाश से प्रकाशित नही है।

भगवती के देह के अन्तर्गत सारा ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों है। ब्रह्माण्ड रूपी विराट् देह में आज्ञा अथवा अन्य चक्रों का स्थिर करना असम्भव है और काल्पनिक मूर्ति के ध्यान में भी चक्रों की कल्पना करने पर साधक को अपने ही आज्ञाचक्र में ध्यान करना पड़ेगा।

'तव' पद का प्रयोग किए जाने का एक अभिप्राय यह भी हो सकता है, कि साधक को अपना देहाभिमान त्याग कर अपना स्थूल सूक्ष्म देह सब भगवती का ही रूप समझना चाहिए।

सुषुम्ना में स्थित सब चक्र चितिशक्ति के विभिन्न केन्द्र होने के कारण भगवती के ही चक्र है।

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात् ।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने ॥

योगशिखोपनिषद् ६,२

ब्रह्मलोक स्वयं प्रकाशमान है। वहाँ अग्नि सूर्य और चन्द्र की गति नहीं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

मुण्डकोपनिषद् २.२.१०

सहस्रार पूर्णज्योति का स्थान है। वह तीनों से ऊपर है। वहां जाकर साधक आवागमन के चक्कर से छूट जाता है।

मन्त्र दो है—परचिदम्बपाद परशम्भुनाथपादयं इति मन्त्रद्वयम् ।

मन को ६४ किरणों में से आधी परशम्भु की और आधी परा चिति की *किरणों से अभिप्राय है।*

> विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं
> शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम् । P B
> ययो कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणे-
> विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ॥३७॥

पदयोजना—[हे भगवति !] ते विशुद्धौ शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं शिवं शिवसमानव्यवसितां देवीमपि सेवे, ययो यान्त्या शशिकिरणसारूप्य-सरणे कान्त्यास्सकाशात् जगती विधूतान्तर्ध्वान्ता चकोरीव विलसति ।

अर्थ—तेरे विशुद्धचक्र में आकाशतत्त्व के जनक शुद्ध स्फटिकवद् स्वच्छ शिव की और शिव के समान सुव्यवसित देवी की भी मैं सेवा करता हूँ, जिन दोनो की चन्द्रमा की किरणों के सदृश कान्ति से जगत् जिसका अन्त-रन्धकार नष्ट हो गया है, चकोरी की तरह आनन्दित होता है।

व्याख्या—स्कन्द में भी कहा है—

> *त्वामाश्रिता महाभागा प्राप्नुवन्त्यचिरेण माम् ।*
> *केवलं त्वामनादृत्य मां भजन्तो विचेतना ।*
> *नार्हन्ति मम सायुज्यं ब्रह्मकल्पशतैरपि ॥*

विशुद्धचक्रमोक्षप्रदा कुण्डलिनी शक्ति स्वपिति ।
सा कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चेद्योगिना मुक्तये भवति ।
शाण्डिल्योपनिषद् १ ३

विशुद्ध चक्र आकाश का स्थान है। श्रुति का कथन है—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशस्सम्भूत ।"

सामान्य आकाश का अर्थ शून्य किया जाता है। परन्तु यहाँ आकाश का सम्बन्ध भावात्मक तत्त्व से है।

पाश्चात्य भौतिक विज्ञानवादी भी आकाश के स्थान पर एक तत्त्व की

सत्ता मानते हैं जिसके माध्यम से प्रकाश, उष्णता, विद्युत् और चुम्बक की किरणें प्रसारित होती हैं।

आकाश की ७२ मयूखें शिव और शक्ति की आधी आधी समझनी चाहिएँ।

> समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं
> भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।
> यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
> र्यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमद्भ्यः पय इव ॥३८॥

पदयोजना—[हे भगवति !] समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं महतां मानसचरं किमपि हंसद्वन्द्वं भजे, यदालापात् अष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः, यद् दोषात् अखिलं गुणम् अद्भ्यः पय इव आदत्ते ॥

अर्थ—हृद्देश में विकसित संवित् कमल से निकलने वाले मकरन्द के एकमात्र रसिक उस किसी (अद्भुत) हंसों के जोड़े का मैं भजन करता हूं जो महान् पुरुषों के मनरूपी मानससरोवर में विहार करता है, जिसके वार्तालाप का परिणाम १८ विद्याओं की व्याख्या है और जो दोषों से समस्त गुण को इस प्रकार निकाल लेता है जैसे हंस जलमिश्रित दूध से दूध को निकाल लेता है।

योगानुशासन में भी कहा है—

> अनुपममनुभूतिस्वात्मसंवेद्यमाद्यं
> विततसकलविद्यालापमन्योन्यमुख्यम्।
> सकलनिगमसारं सोऽहमोङ्कारगम्यं
> हृदयकमलमध्ये हंसयुग्मं नमामि ॥

व्याख्या—संवित् कमल का स्थान वक्षस् में है। यह आत्मा का स्थान है। इस स्थान पर 'हंसः' मन्त्र का जाप किया जाता है।

"हृदयेऽष्टदले हंसात्मानं ध्यायेत्।"

"हंसः" इस मन्त्र का एक कोटि जप करने से यह कमल खिलता है। हं और सः दोनों को हंस और हंसिनी का जोड़ा कहते हैं। हं पुमान् है और सः शक्ति का रूप है।

हंस का जोडा जब वार्तालाप करता है तो योगियों को १८ विद्याओं का ज्ञान हो जाता है। १८ विद्यायें है—

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष छन्द चार वेद, दोनो मीमांसा दर्शन न्याय पुराण धर्मशास्त्र आयुर्वेद धनुर्वेद, गान्धर्व विद्या और नीति शास्त्र।

हंस का जोडा एक दीप शिखा सदृश है।

तस्य (हृदयस्य) मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता । नील-तोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ॥ नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा । तस्या शिखाया मध्ये च परमात्मा व्यवस्थित । स ब्रह्मा स शिव स हरि सेन्द्र सोऽक्षर परम स्वराट ॥

नारायणोपनिषद् खण्ड १३

बृहदारण्यकोपनिषद् म भी इसका वर्णन मिलता है। मनोमयोऽय पुरुषो भा सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एव सर्वस्येशान सर्व-स्याधिपति सर्वमिद प्रशास्ति यदिद किञ्च ॥

तव स्वाधिष्ठान हुतवहमधिष्ठाय निरत
तमीडे सवर्त जननि महतीं ता च समयाम्।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते
दयार्द्रा या दृष्टि शिशिरमुपचार रचयति ॥३९॥

पदयोजना—[हे जननि !] तव स्वाधिष्ठान हुतवह सवर्तमधिष्ठाय निरत तम् ईडे, समया ता महतीं च ईडे। महति क्रोधकलित यदालोके लोकान् दहति सति या दयार्द्रा दृष्टि शिशिरमुपचार रचयति सा त्वदीया दृष्टिरिति शेष ॥

अर्थ—[हे जननि !] तव स्वाधिष्ठान चक्र म अग्नितत्त्व को अधिष्ठान (प्रभाव) म रखने के लिए जो सवर्ताग्नि रहता है उसके और उस महती समया देवी की मैं स्तुति करता हू। जिस समय सवर्ताग्नि बडी क्रोध भरी दृष्टि से लोको को जलाने लगता है, उस समय देवी की दयार्द्र दृष्टि उपचार करती है।

व्याख्या—कुण्डलिनी शक्ति के जागने का फल समाधि है। योगी प्रतिप्रसवक्रम का आश्रय लेकर ही षट्चक्र वेध करता है। और पञ्च-महाभूतों पर जय प्राप्त करता है। सृष्टिक्रम में शक्ति प्रभवाभिमुख होकर ही विविध रचना करने लगती है, मानों वह दयार्द्र दृष्टि से संवर्ताग्नि को शान्त करके लोकानुग्रह करती है। यदि यह लय क्रम तीव्र हो तो शरीर के नष्ट होने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु ऐसा होता नहीं। शरीर ही तो मोक्ष और भोग दोनों का साधन है। जब तक जीवन्मुक्ति की दशा प्राप्त नहीं होती, शरीर की रक्षा करना परम कर्तव्य है।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।"

स्वाधिष्ठान में संवर्ताग्नि शिवस्वरूप है तथा समया देवी जल की शिवात्मिका शक्ति है। मणिपूर में मेघेश्वर पर्जन्य जल की शिवात्मिक शक्ति है और सौदामिनी अग्नि की शक्त्यात्मिका शक्ति है।

कुण्डलिनी, हंस, विन्दु और चिति—शक्ति सब एक ही शक्ति के रूप हैं।

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः ।
रूपं विन्दुरिति ख्यातं रूपातीतस्तु चिन्मयः ॥

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थस्फुरणया
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम् ।
तव (तमः) श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् ॥४०॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तव मणिपूरैकशरणं तिमिरपरिपन्थि-स्फुरणया शक्त्या तडित्वन्तं स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषं श्यामं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनं वर्षन्तं कमपि मेघं निषेवे ।

अर्थ—तेरे मणिपूर की शरण में गये हुए श्याम मेघों में रूप, धारण करने वाले कं जल की भी सेवा करता हूं, जिसमें अन्धकार की परिपन्थिनी अर्थात् प्रतिद्वन्द्विनी बिजली की चमक, आभरणों में जटित नाना रत्नों की चमक सदृश इन्द्रधनुष का रूप धारण किए हुए है और जो अग्नि और सूर्य के ताप से सन्तप्त त्रिभुवन पर वर्षा कर रहे हैं।

व्याख्या—सिद्धघुटिका मे भी कहा गया है—

मणिपूरैकवसति प्रावृषेण्यस्सदाशिव ।
अम्बुदात्मतया भाति स्थिरसौदामिनी शिवा ॥

'स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुष' से अभिप्राय मौर्वीरहित धनु से है ऐसा आगम मे कहा गया है ।

तदिन्द्रधनुरित्यज्यम् । अभ्रवर्णेषु चक्षते ।
एतदेव शयोर्बार्हस्पत्यस्य । एतद्रुद्रस्य धनु ।

अरुणोपनिषद्

ये लोक जल मे ही प्रतिष्ठित हैं—

इमे वै लोका अप्सु प्रतिष्ठिता ।

जल से ही चन्द्रोत्पत्ति, सूर्योत्पत्ति, अग्न्युत्पत्ति और सभी नक्षत्रो की उत्पत्ति होती है । ऋग्वेद मे कहा है—

तदेवाऽभ्युक्ता । अपां रसमुदय सन् ।
सूर्ये शुक्र समाभृतम् । अपां रसस्य
यो रस. । त वो गृह्णाम्युत्तमम् । इति ।

उदकतत्त्वात्मक मणिपूर मे प्रतिष्ठित नाव श्रीचक्रात्मिका है ।

योऽप्सु नाव प्रतिष्ठिता वेद ।
प्रत्येव तिष्ठति ।

और भी—

सुत्रामाण पृथिवी द्यामनेहस सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवी नाव स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
(शिवा)नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम् ।
उभाभ्यामेताभ्यामुद(म)य विधिमुद्दिश्य दयया
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीवज्जगदिदम् ॥४१॥

पदयोजना—[हे भगवति] तव मूले आधारे लास्यपरया समयया सह

नवरसमयाताण्डवनटं नवात्मानं मन्ये । इद जगत् उदयविधिमुद्दिश्य एताभ्याम उभाभ्यां दयया सनाथाभ्यां जनकजननीमत् जज्ञे ।

अर्थ—तेरे मूलाधार मे लास्यपरा अर्थात नृत्य करती हुई समया देवी के साथ, नवधा रसपूर्ण ताण्डव नृत्य करने वाले नटेश्वर नवात्मा शिवजी का मैं चिन्तन करता हूं। यह जगत् इन दोनों के जनकजननीवत् दया से प्रभवाभिमुख होने के कारण अपने को सनाथ मानता है।

व्याख्या—समया देवी से समाचार की उपास्य देवी निर्दिष्ट है।

भगवती के नृत्य का नाम लास्य है—

"स्त्रीकर्तृकं नृत्यं लास्यमित्युच्यते ।"

ताण्डव शङ्कर के नृत्य का नाम है—

"पुंकर्तृकं नृत्यं ताण्डवमित्युच्यते ।"

नौ रस हैं—शृङ्गार, बीभत्स, रौद्र, अद्भुत, भयानक, वीर, हास्य, करुण और शान्त।

ये नौ रस साहित्य, कविता, नृत्य और गायन विद्या के अङ्ग हैं।

महिम्नस्तुति में कहा है—"जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता" उभाभ्याम् मे अभिप्राय भैरवी और भैरव मे ही है—

जपाकुसुमसङ्काशौ मदघूर्णितलोचनौ ।
जगतः पितरौ वन्दे भैरवीभैरवात्मकौ ॥

आधारचक्र में जब प्राणशक्ति का निरोध होता है तब शरीर कांपने लगता है, योगी नृत्य करने लगता है और वही सारा विश्व दीखने लगता है। आधारचक्र में जो सृष्टि का आधार है, सब देवता, सब वेद रहते हैं, इसलिए आधार चक्र का आश्रय लेना चाहिए। इस नृत्य को आनन्द ब्रह्म के उन्मेष से प्रेरणा मिलती है और प्रलयकालीन विराम भी नृत्य के परिश्रम के अनन्तर विश्राम रूपी आनन्द का आभोगरूपी निमेष है। शिवजी के इस आनन्दोन्मेषरूपी ताण्डव को वेदों ने संवर्तन और शङ्कर भगवत्पाद ने विवर्तन कहा है।

"शिवताण्डव का साक्षात् प्रत्यक्षीकरण तारों की टिमटिमाहट में, ग्रहों के नृत्य में, सूर्य के उदय अस्त होने में, पृथ्वी की षट् ऋतुओं के शृङ्गार-

युक्त नाट्य मे चन्द्रमा की कलाओ मे, विद्युत् की क्रीडा मे, वसन्त की मन्द-सुगन्धित वायु के झोको मे, पुष्पा के हास्य मे, समुद्र की तरङ्गो मे, हिमपात के हिमकरणो के नर्तन मे आँधी-तूफान की द्रुतगति मे, नदियो के कलकल निनाद मे, पर्वतो के शृङ्गार मे शस्यश्यामला भूतल के अञ्चल की हिलोरो मे, पशु पक्षियो की अठखेलियो म मनुष्य की मस्तीभरी चालो मे और अन्यत्र सर्वत्र किया जा सकता है।"

इस प्रकार स्वामी विष्णुतीर्थ जी ने बडे सुन्दर एव काव्यात्मक ढग से शिव ताण्डव के साक्षात् प्रत्यक्षीकरण का अवलोकन किया है। यह इस सब विराट् विश्व सृष्टि-प्रसार का निम्नतम स्तर रूपी मूलाधार है जिसमे भगवती के इस लास्य नृत्य और शङ्कर के ताण्डव को युगपत् देखने वाले उपासक जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते है।

मुकुट का ध्यान—

> गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं
> किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः ।
> स नीडे यच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं
> धनुः शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणा ॥४१॥

पदयोजना—[हे हिमगिरिसुते !] माणिक्यत्व गतै गगनमणिभि सान्द्रघटित हैम ते किरीट य कीर्तयति स नीडे यच्छायाच्छुरणशबल चन्द्र-शकल शौनासीर धनुरिति धिषणा कि न निबध्नाति ॥

अर्थ—[हे हिमाचल की पुत्री !] जो मनुष्य तेरे सुवर्ण के बने हुए किरीट का वर्णन करे तो उसकी धारणा ऐसी क्यो न होगी कि मानो इन्द्र-धनुष निकला हुआ है। क्योकि वह किरीट गगनमणियो अर्थात् तारागण रूपी मणियो से घनीभूत जड हुआ और चन्द्रमा के टुकडे के बने पक्षी घोसले के सदृश जान पडता है और जो उष कालीन प्रकाश मे रङ्गबिरङ्गा चमक रहा है।

व्याख्या—उष कालीन आकाश प्रकृति देवी का किरीट है। यहाँ कृष्ण चतुर्दशी और अमावास्या की सन्धि मे पडने वाले उष काल का चित्र खीचा गया है। कृष्णा चतुर्दशी भगवती की उपासना के लिए उपयुक्त तिथि समझी

जाती है। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार कार्तिक की कृष्णा चतुर्दशी ली जाए तो और भी अच्छी है। इसको रुद्र चतुर्दशी भी कहते हैं।

यहाँ उत्प्रेक्षा, अपह्नव, अतिशयोक्ति एवं सन्देह अलङ्कार है।

केशों का ध्यान—

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं
घनस्निग्धं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरम्वं तव शिवे।
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन्मन्ये वलमथनवाटीविटपिनाम् ॥४३॥

पदयोजना—[हे शिवे !] तुलितदलितेन्दीवरवनं घनस्निग्धं श्लक्ष्णं तव चिकुरनिकुरम्वं नः ध्वान्तं धुनोतु। यदीयं सहजं सौरभ्यम् उपलब्धुम् अस्मिन् वलमथनवाटीविटपिनां सुमनसः वसन्तीति मन्ये॥

अर्थ—[हे शिवे !] तेरे गहरे चिकने मुलायम केशों का समूह, जो खिले हुए इन्दीवर के वन की तुलना करता है, हमारे अज्ञानान्धकार को हटाये, जिसमें गुंथे हुए इन्द्र की वाटिका के वृक्षों के पुष्प, मेरी समझ में, उसकी सुगन्धि से स्वयं सहज ही सुगन्धित होने के लिए वहाँ आ बसे हैं।

व्याख्या—केश सज्जा के लिए स्त्रियाँ अपने केशों में पुष्प गूँधा करती हैं। साधारण स्त्रियों के केश धारण किए हुए पुष्पों से सुगन्धित होते हैं, परन्तु भगवती के केशों की सुगन्ध से पुष्प स्वयं सुवासित होते हैं।

यहाँ उत्प्रेक्षा, उपमा, संसृष्टि एवं सङ्कर अलङ्कार है।

वहन्ती सिन्दूरं प्रवलकवरीभारतिमिर-
द्विषां वृन्दैर्वन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम्।
तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-
परिवाहस्रोतःसरणिरिव सीमान्तसरणिः ॥४४॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहस्रोतस्सरणि-रिव स्थिता तव सीमान्तसरणिः प्रवलकवरीभारतिमिरद्विषां वृन्दैः वन्दीकृतं नवीनार्ककिरणमिव सिन्दूरं वहन्ती नः क्षेमं तनोतु॥

अर्थ—तेरे मुख की सौन्दर्यलहरी के प्रवाहस्रोत के मार्ग सदृश सिन्दूर से भरी तेरे केशो की माँग हमारे क्षेम (कल्याण) का प्रसार करे, जो कि केशो के भारमय अन्धकार रूपी प्रबल दुश्मनो के बृन्दा से बन्दी की हुई उदय होने वाले नवीन सूर्य की किरण के सदृश है।

व्याख्या—स्रोत का प्रवाह ऊपर से निम्न तल पर हुआ करता है, परन्तु भगवती की शोभा की कान्ति ऊर्ध्वगामिनी है। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार उसे योगियों मे ज्ञान के सूर्य के उदय होने से पूर्व प्रकट होने वाले प्रातिभ ज्ञान के सदृश समझना चाहिए।

यहाँ उत्प्रेक्षा, रूपक एव सङ्कर अलङ्कार है।

अलको का ध्यान—

> **अरालैं स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः**
> **परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुहरुचिम्।**
> **दरस्मेरे यस्मिन्दशनरुचि किञ्जल्करुचिरे**
> **सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिह ॥४५॥**

पदयोजना—[हे भगवति !] स्वाभाव्यादरालैं अलिकलभसश्रीभि अलकै परीत ते वक्त्र पङ्केरुहरुचि परिहसति। दरस्मेरे दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे सुगन्धौ यस्मिन् स्मरदहनचक्षुर्मधुलिह माद्यन्ति॥

अर्थ—स्वाभाविक घुघराली जवान भौंरो की कान्तियुक्त अलकावलि से घिरा हुआ तेरा मुख, कमलो की शोभा का परिहास करता है—जिसमे स्फटिक सदृश शोभा वाले दाँतो से किञ्चित् मुस्कराते समय निकलने वाली सुगन्ध पर काम के दहन करने वाले शिवजी के नेत्र रूपी भौंरे मस्त हो जाते हैं।

व्याख्या—भाव यह है कि वह निर्गुण ब्रह्म प्रकृति के गुणों का भोक्ता भी है।

> "असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुण गुणभोक्तृ च।"
>
> श्रीमद्भगवद्गीता

यहां उपमा, रूपक और सङ्कर अलङ्कार है।

ललाट का ध्यान—

ललाटं लावण्यद्युतिविमलमाभाति तव यद्
द्वितीयं तन्मन्ये मुकुटघटितं चन्द्रशकलम्।
विपर्यासन्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः
सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ॥४६॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तव यत् ललाटं लावण्यद्युतिविमलम् आभाति तत् मुकुटघटितं द्वितीयं चन्द्रशकलं मन्ये। यद्यस्मात्कारणात् उभयमपि विपर्यासन्यासात् मिथः सम्भूय च सुधालेपस्यूतिः राकाहिमकरः परिणमति ॥

अर्थ—लावण्य कान्ति से युक्त विमल चमकने वाला जो तेरा ललाट है, उसे मैं मुकुट में जड़ी हुई चन्द्रमा की दूसरी कला समझता हूं, जो एक दूसरे पर उलट कर रखी होने के कारण दोनों का एक रूप बनकर और अमृत के लेप से जुड़ कर पूर्ण चन्द्रमा बन गया है।

यहाँ उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार है। अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

भृकुटी का ध्यान—

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद् भुवनभयभङ्गव्यसनिनि
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणम्।
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे ॥४७॥

पदयोजना—[हे] उमे ! भुवनभयभङ्गव्यसनिनि ! त्वदीये किञ्चिद्-भुग्ने भ्रुवौ मधुकररुचिभ्यां नेत्राभ्यां धृतगुणं रतिपतेः सव्येतरकरगृहीतं प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति सति निगूढान्तरं धनुर्मन्ये ॥

अर्थ—हे भुवन के भय का नाश करने में आनन्द लेने वाली उमा ! भौंहों की त्यौरी चढ़ने पर मैं उसको बायें हाथ में लिये हुए कामदेव के धनुष से उपमा देता हूं जिसकी प्रत्यञ्चा भौंरों की कान्ति वाले तेरे दोनों नेत्रों की बनी है और जिसका मध्य भाग मुट्ठी और कलाई के नीचे छिपा हुआ है।

व्याख्या—भाव यह है कि भगवती की त्योरी का ध्यान करने से काम-वासना शान्त हो जाती है और सब भय दूर हो जाते हैं।

संसार का सबसे बडा शत्रु काम है, इसलिए उसका धनुष मानो भगवती ने स्वय छीन लिया है।

> काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव ।
> महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
>
> श्रीमद्भगवद्गीता ३, ३७

यहाँ उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सन्देह और सङ्कर है।

तीन नेत्रों का ध्यान—

> **अह सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया**
> **त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया ।**
> **तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः**
> **समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम् ॥४८॥**

पदयोजना—[हे भगवति !] तव सव्य नयनम् अर्कात्मकतया अहस्सूते। ते वाम नयन रजनीनायकतया त्रियामा सृजति। ते तृतीया दृष्टि दरदलितहेमाम्बुजरुचि दिवसनिशयो अन्तरचरी सन्ध्या समाधत्ते।

अर्थ—तेरा दक्षिण नेत्र सूर्यात्मक होने से दिन बनाता है और बाया नेत्र चन्द्रात्मक होने से रात्रि की सृष्टि करता है तथा किञ्चित् विकसित सुवर्ण के बने हुए कमल की शोभा से युक्त तेरी तीसरी दृष्टि दिन और रात दोनो के बीच रहने वाली सन्ध्या है।

व्याख्या—स्वामी विष्णु तीर्थ जी के अनुसार दिवस से जाग्रत, रात्रि से सुषुप्ति और सन्ध्या से स्वप्नावस्था ग्रहण करनी चाहिए। [सान्ध्य तृतीयं स्वप्नस्थानम्—बृहदारण्यक।] भगवती की कृपा-दृष्टि से जाग्रत मे जगत् की अज्ञात स्वरूप प्रतीति होती है, रात्रि मे सुषुप्ति का अज्ञानान्धकार रहता है, परन्तु वह भगवती के चन्द्रात्मक नेत्र के प्रकाश से ज्ञानमय समाधि की अवस्था मे परिणत हो जाता है और सन्ध्या रूपी स्वप्नावस्था ज्ञान की वह कोटि है जिसमे जगत् स्वप्नवत् दीखने लगता है।

ज्ञानी जाग्रत में जगत् को ब्रह्म में स्थित देखता है—

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।'—

श्रीमद्भगवद्गीता

विराट् दर्शन में अर्जुन ने देवाधिदेव के शरीर में ही सब लोगों को देखा—

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराऽऽभोगवतिका ।
अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते ॥४९॥

पदयोजना—[हे भगवति !] ते दृष्टिः विशाला कल्याणी स्फुटरुचिः कुवलयैः अयोध्या कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुरा आभोगवतिका अवन्ती बहुनगरविस्तारविजया तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या ध्रुवं विजयते ।

अर्थ—तेरी दृष्टि विशाला, कल्याणी, खिले हुए कमलों की शोभा की उपमा से ऊँची अयोध्या, कृपा धारा सदृश धारा कुछ-कुछ मधुरा, आभोगवतिका, सबकी रक्षा करने वाली अवन्तिका और अनेक नगरों के विस्तार को जीतने वाली विजया है और निश्चय से इन प्रत्येक नगरियों के नाम से सम्बोधित नाना अर्थों के सन्देह को हरण करने के योग्य है ।

व्याख्या—स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार भगवती की दृष्टि आठ प्रकार के भावों से युक्त है । उदारता के कारण विशाला है । सबका कल्याण करती है इसलिए कल्याणी है । कमलों की शोभा के समान सुन्दर लगती है, इसलिए अयोध्या है । मधुर होने के कारण मधुरा है । भोगों को देती है इसलिए भोगवतिका है । सबकी रक्षा करती है, इसलिए अवन्तिका है और तेरे पराक्रम को कोई नहीं पा सकता, इसलिए विजया है ।

पण्डित सुब्रह्मण्य शास्त्री और श्रीनिवास आयङ्गर ने दृष्टि के स्वरूप इस प्रकार बताये हैं—

अन्तर्विकसित दृष्टि विशाला, आश्चर्ययुक्त दृष्टि धारा, नत्रों के किञ्चित् चक्कर खाने पर मधुरा, मैत्री भाव से युक्त भोगवती, निष्पाप दृष्टि जिसमें भोलापन टपकता हो, वह अवन्ती और तिरछी निगाह विजया कहलाती है। इन दृष्टियों का प्रभाव क्रमशः उच्चाटन, आकर्षण, द्रवीकरण, सम्मोहन, वशीकरण, ताडन, विद्रावण और मारण है।

कवीनां सन्दर्भस्तवकमकरन्दैकरसिकं
कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम्।
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरला-
वसूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम् ॥५०॥

पदयोजना—[हे भगवति !] कवीनां सन्दर्भस्तबकमकरन्दैकरसिकं तव कर्णयुगलं कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ नवरसास्वादतरलौ अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा असूयासंसर्गात् अलिकनयनं किञ्चिदरुणम्।

अर्थ—कवियों के कविता रूपी स्तवक से उठने वाली सुगन्ध के रसिक कानों का साथ छोड़ने वाले, तेरे कटाक्ष विक्षेपयुक्त, तिरछी निगाह से देखने वाले भ्रमरों के सदृश और कविताओं के ६ रसों का आस्वाद लेने को बेचैन दोनों चञ्चल नेत्रों को देखकर ईर्ष्या के संसर्ग से तेरा (तीसरा) मस्तक वाला नेत्र कुछ लाल रङ्गयुक्त है।

व्याख्या—यहाँ अतिशयोक्ति, अपह्नव और रूपक है। अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कीर्ण है।

शिवे शृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा
सरोषा गङ्गायां गिरिशचरिते विस्मयवति।
हराहिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजयिनी
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा ॥५१॥

पदयोजना—[हे जननि !] ते दृष्टिः शिवे शृङ्गारार्द्रा, तदितरजने कुत्सनपरा, गङ्गायां सरोषा, गिरिशचरिते विस्मयवती हराहिभ्यो भीता, सरसिरुहसौभाग्यजननी, सखीषु स्मेरा, मयि सकरुणा ॥

अर्थ—शिव के प्रति तेरी दृष्टि शृङ्गारार्द्र है, इतर जनों के प्रति कुत्सित उपेक्षायुक्त, गङ्गा पर सरोष, शिवजी के चरित्रों पर विस्मय प्रकट करने

वाली, शिवजी के सर्पों से भीत, कमलों की शोभा को पराजित करने वाली, सखियों के प्रति मुस्कान लिये हुए है, और, हे जननि ! मेरे ऊपर तेरी करुणा-युक्त दया-दृष्टि है ।

व्याख्या--स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार भगवती की स्वाभाविक दृष्टि शान्त रसपूर्ण है जो शान्ति कला का स्वभाव है । इसलिए इस श्लोक में शान्त रस का नाम नहीं आया है । रस नौ हैं –

शृङ्गार, वीभत्स (घृणा), रौद्र, अद्भुत (विस्मय), भयानक, वीर, हास्य, करुणा और शान्त ।

भरतमुनि के अनुसार शान्त के निर्विकारत्व होने से शान्त रस नहीं है--

"शान्तस्य निर्विकारत्वान्न शान्तं मेनिरे रसम् ।"

अलङ्कार—यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है ।

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती
पुरां भेत्तश्चित्तप्रशमरसविद्रावणफले ।
इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके
तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥५२॥

पदयोजना – [हे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके !] तव इमे नेत्रे कर्णाभ्यर्णं गते पक्ष्माणि गरुत इव दधती पुरां भेत्तुः चित्तप्रशमरसविद्रावणफले आकर्ण-कृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥

अर्थ —[हे पर्वतराज के कुल की प्रमुख कली !] ये तेरे बाणों के सदृश दोनों नेत्र कानों तक पहुंचे हुए हैं, जो पंखों के स्थान पर पलकें धारण किये हुए हैं और पुरारि के चित्त की शान्ति को भङ्ग करने वाले फल से युक्त हैं, कान तक ताने हुए कामदेव के बाणों का कार्य कर रहे हैं ।

व्याख्या—कामदेव के बाणों का प्रहार मनुष्यों के चित्त में क्षोभ उत्पन्न करता है अर्थात् परब्रह्म में स्पन्द उत्पन्न करता है ।

यहाँ निदर्शनालङ्कार है ।

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरितलीलाञ्जनतया
विभाति त्वन्नेत्रत्रितयमिदमीशानदयिते ।
पुनः स्रष्टुं देवान्द्रुहिणहरिरुद्रानुपरतान्
रजः सत्त्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ॥५३॥

पदयोजना—[हे ईशानदयिते !] इदं त्वन्नेत्रत्रितयं व्यतिकरितलीलाञ्जनतया विभक्तत्रैवर्ण्यम् उपरतान् द्रुहिणहरिरुद्रान् देवान् पुनः स्रष्टुं रजस्सत्त्वं तम इति गुणानां त्रयमिव बिभ्रत् विभाति ॥

अर्थ—[हे ईशान की दयिते !] ये तेरे तीनों नेत्र तीन रङ्ग का अञ्जन लगाने से मानो पृथक् पृथक् तीन रङ्ग के चमक रहे हैं और महाप्रलय के अन्त में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को, फिर पैदा करने के लिए रज, सत्त्व और तम—तीनों गुणों को धारण किये हुए से प्रतीत होते हैं।

व्याख्या—सत्त्वगुण का श्वेतवर्ण, रजोगुण का रक्तवर्ण और तमोगुण का नीलवर्ण है। ब्रह्मा रजोगुण के, विष्णु सत्त्व गुण के और रुद्र तमोगुण के अधिदेव हैं। इसलिए प्रलय के अन्त में माता भगवती के तीनों नेत्रों के खुल जाने पर वह उनमें सत्त्व, रज और तम रूपी तीन प्रकार का अञ्जन लगा लेती है। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार यद्यपि सृष्टि की शक्ति एक ही है तो भी तीन प्रकार के गुणों के कारण वह त्रिधा दिखाई देती है, सृष्टि, स्थिति, संहार करने की तीनों शक्तियाँ एक ही शक्ति के तीन रूप हैं।

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'

यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है।

पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः ।
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुं (मय)
त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघम् ॥५४॥

पदयोजना—[हे पशुपतिपराधीनहृदये !] दयामित्रैः अरुणधवलश्यामरुचिभिः नेत्रैः शोणो नदः गङ्गा तपनतनयेति त्रयाणां तीर्थानाम् अमुम् अनघं सम्भेदं पवित्रीकर्तुम् उपनयसि ध्रुवम् ।

अर्थ—[पशुपति शङ्कर भगवान् की पराधीनता में हृदय समर्पण करने वाली हे भगवती ! अरुण, शुक्ल और श्याम वर्णों की शोभा से युक्त दयापूर्ण अपने नेत्रों से शोण, गङ्गा और सूर्यतनया (यमुना) नदी—इन तीनों तीर्थों के सदृश निश्चय ही हम लोगों को पवित्र करने के लिए तू पवित्र सङ्गम बना रही है।

व्याख्या—नासिका के अग्रभाग पर, भ्रूमध्य में और ललाट प्रदेश में ध्यान करने की विधि योग धारणा के प्रधान साधन है। उन स्थानों पर धारणा करके वहाँ चित्त को ध्यानमग्न कर देना ही उक्त तीर्थों में स्नान करना है।

योगियों की अन्तरात्मा भगवती के ध्यान रूपी सङ्गम में लीन हो जाने से पवित्र होती हैं; केवल सङ्गम के जल में नहाने से नहीं।

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् पाषाणमृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मध्यानपरायणाः॥"

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः ॥५५॥

पदयोजना--[हे धरणिधरराजन्यतनये !] तव निमेषोन्मेषाभ्यां जगती प्रलयमुदयं यातीति सन्तः आहुः। अतः त्वदुन्मेषात् जातम् अशेषम् इदं जगत् प्रलयतः परित्रातुं तव दृशः परिहृतनिमेषाः इति शङ्के॥

अर्थ—[हे धरणिधर राजन्य हिमाचल की पुत्री !] सन्तों का कहना है कि तेरे निमेष (नेत्र बन्द करने) से जगत् का प्रलय और उन्मेष अर्थात् नेत्र खोलने से उद्भव अर्थात् सृष्टि होती है। यह सारा जगत् प्रलय के पश्चात् तेरे उन्मेष से उत्पन्न हुआ है, उसकी रक्षा करने के लिए ही मुझे शङ्का होती है कि तेरी आँखों ने झपकना बन्द कर रखा है।

व्याख्या—देवताओं के नेत्रों में झपकियाँ नहीं पड़तीं हैं। इसलिए भगवती के नेत्र भी सदा निमेषोन्मेष रहते हैं।

"देवतानामनिमेषत्वं स्वभावसिद्धम्।"

भक्तचूडामणि श्रीवत्सराज ने कामसिद्धिस्तोत्र मे भी कहा है

> लोकाश्चतुर्दश महेन्द्रमुखाश्च देवा
> भातस्त्रयी मुनिगणश्च वसिष्ठमुख्य ।
> सद्यो भवन्ति न भवन्ति समस्तमूर्ते
> सम्मीलनेन तव देवि निमीलनेन ॥

तवापर्णे कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिता
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः ।
इयं च श्रीर्बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥५६॥

पदयोजना—हे अपर्णे ! तव कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिता शफरिका अनिमेषास्तोये निलीयन्ते नियतम् । [किञ्च—]इय च श्री बद्धच्छदपुटकवाट कुवलय प्रत्यूषे जहाति निशि च तत् विघटय्य प्रविशति ॥

अर्थ—[हे अपर्णे !] निमेष रहित मछलियाँ तो सदा पानी मे छिपी रहती हैं, उनको यह भय रहता है कि कही आँखें ईर्ष्यावश उनकी चुगली तेरे कानो से न कर दें और यह लक्ष्मी सवेरा होने पर कपाटो के सदृश बन्द हो जाने वाले दलयुक्त कुमुदिनी को छोड जाती है तथा रात्रि को उन्हें खोल कर प्रवेश करती है ।

व्याख्या—यहाँ कवि ने बहुत काव्यात्मक ढङ्ग से नेत्रो के प्रतिद्वन्द्वी-मछली और कुमुदिनी का वर्णन किया है ।

अलङ्कार—यहाँ पूर्वार्ध म उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । उत्तरार्ध मे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः ॥५७॥

पदयोजना—हे शिवे ! द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा दृशा दवीयास दीन कृपया मामपि स्नपय अयम् अनेन धन्यो भवति । इयता ते हानिर्न च

तथा हि—हिमकरः वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हि। (स्वच्छान्तःकरणानां सर्वसाधारण्यं स्वभावसिद्धमिति भाव)।

अर्थ—[हे शिवे!] किञ्चित् विकसित नीलोत्पल की शोभा से युक्त दूर तक पहुँचने वाली अपनी दृष्टि से कृपया दूरस्थित मुझ दीन को भी स्नान करा दे। उससे यह धन्य हो जायगा और ऐसा करने से तेरी कोई हानि नहीं है, क्योंकि चन्द्रमा की किरणें वन में और महलों में समान रूप से पड़ती है।

व्याख्या—देवी की दृष्टि में सब बराबर हैं। इसलिये भक्त देवी से प्रार्थना कर रहा है कि मुझ दीन को भी अपनी कृपा का पात्र बना ले।

अलङ्कार—यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

कनपटियों का ध्यान—

अरालं ते पालीयुगलमगराजन्यतनये
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम्।
तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलस-
न्नपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसन्धानधिषणाम् ॥५८॥

पदयोजना—हे अगराजन्यतनये! ते पालीयुगलमरालं कुसुमशर-कोदण्डकुतुकं केषां नाधत्ते। यत्र तिरश्चीनः विलसन् अपाङ्गव्यासङ्गः श्रवण-पथमुल्लङ्घ्य शरसन्धानधिषणां दिशति॥

अर्थ—[हे पर्वतराज की पुत्री! तेरी दोनों वक्र कनपटियाँ किसकी दृष्टि में पुष्प बाण धारण करने वाले धनुष के कोणों का कौतूहल न करेंगी। जहाँ श्रवणपथ का उल्लङ्घन करके तेरा तिरछा कटाक्ष कनपटी को लाँघकर कान तक पहुँचे हुए बाण सदृश दीखता है जो दोनों भौंहों के धनुष पर चढ़ा हुआ है।

अलङ्कार—यहाँ भ्रान्तिमद् अलङ्कार और सन्देहालङ्कार है।

अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

"पाली प्रवाली कर्णाङ्गी कर्णकोटी विभूषणा"

इति विश्वः

मुख का ध्यान—

स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम्। P B
यमारुह्य (यमाश्रित्य) द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणं
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते ॥५९॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तव इदं मुखं स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलित-ताटङ्कयुगलं चतुश्चक्रं मन्मथरथं मन्ये। यमारुह्य मारः महावीरस्सन् अवनि-रथमर्केन्दुचरणं सज्जितवते प्रमथपतये द्रुह्यति।

अर्थ—तेरे चमकते हुए कपोलों पर प्रतिबिम्बित दोनों कर्णफूलों से युक्त तेरा मुख मुझे चार पहियों वाला कामदेव का रथ जँचता है जिस पर चढ़ कर अथवा जिसका आश्रय लेकर महावीर कामदेव, सूर्य और चन्द्रमा दो पहियों वाले पृथिवी रूपी रथ पर युद्धार्थ सुसज्जित शङ्कर के विरुद्ध अड़ा है।

व्याख्या—यहाँ देवी के मुखरूपी रथ का आश्रय लेने के कारण कामदेव शङ्कर के समक्ष युद्ध करने का साहस करता है।

अलङ्कार—यहाँ पूर्वार्ध में उत्प्रेक्षालङ्कार है। द्वितीयार्ध में काव्यलिङ्ग-अलङ्कार है और अतिशयोक्ति है।

काव्यलिङ्ग और अतिशयोक्ति के अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

सरस्वत्याः सूक्तीरमृतलहरीकौशलहरीः
पिबन्त्याः शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलम्। P B
चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः कुण्डलगणो
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥६०॥

पदयोजना—हे शर्वाणि ! ते अमृतलहरीकौशलहरीः सूक्तीः श्रवण-चुलुकाभ्यामविरलं पिबन्त्याः चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः सरस्वत्याः कुण्डल-गणः तारैः झणत्कारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव।

अर्थ—[हे शर्वाणि !] सरस्वती की सुन्दर उक्ति को जो अमृत की लहरों के कौशल को हरती है, श्रवणरूपी चुल्लुओं द्वारा अविरल पान करते समय तेरे कुण्डलगण चमत्कारपूर्ण उक्तियों की श्लाघा सूचक सिर हिलाते हुए

क्षरण-क्षरण बनकर मानो ॐकार के उच्चारण सदृश हुँकार द्वारा उत्तर दे रहे हैं।

व्याख्या— जैसे आजकल हाँ या हुँ कहकर अनुज्ञा प्रकट की जाती है वैसे प्राचीन समय में अनुज्ञा सूचक शब्द के स्थान पर ॐ कहते थे।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किञ्चानुजानाति ॐ इत्येव तदा हैषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वै कामाना भवति यस्तदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते।

छान्दोग्योपनिषद् १, १.८

अलङ्कार—पूर्वार्ध में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।
उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।
अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

शर्वाणि—इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृड इत्यादि में आनुक् और ङीप प्रत्यय।

लहरीवीचिकोर्मय. इति विश्वप्रकाश.।

२१

असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटि !
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम्।
वहत्यन्तर्मुक्ताः शिशिरकरनिश्वासगलितं
समृद्ध्या यत्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः ॥६१॥

पदयोजना—हे तुहिनगिरिवंशध्वजपटि ! त्वदीयोऽसौ नासावंश अस्माकम् उचितं नेदीयः फलं फलतु। सः अन्त. मुक्ताः वहति। यद्यस्मात्कारणात् तासां समृद्ध्या शिशिरकरनिश्वासगलितं बहिरपि च मुक्तामणिधर॥

अर्थ—[हे तुहिनगिरि अर्थात् हिमालय के वंश की ध्वजा की पताके !] तेरे नाक का यह बाँस हमको शीघ्र उचित फल को देने वाला हो अथवा उस पर हमारे लिए उचित फल लगे, क्योंकि उसके भीतर तेरे अति शीतल निश्वासों में मोती बन रहे है और बाये नथने में उनकी इतनी समृद्धि है कि एक मुक्तामणि बाहर भी दीख रही है।

व्याख्या—वंश द्वयर्थवाचक शब्द है—बाँस और कुल। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार हिमाचल पर लगे हुए बाँस पर ध्वजा फहराई जाय तो उसकी

पताका के सदृश भगवती की उपमा है। दूसरे अर्थ में भगवती को हिमालय के कुल की ध्वज-पताका सदृश कहा गया है।

'मुक्ता' शब्द भी द्वयर्थवाचक है। मोती को मुक्ता कहते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष भी मुक्त कहलाते है। जैसे बाँस मे फल नहीं लगते और उसके भीतर पोल में मोतियो का उत्पन्न होना सुना जाता है उसी प्रकार भगवती के मुक्तावत् श्रेष्ठ कुल मे अर्थात् भगवती के उज्ज्वल उपासक सम्प्रदाय मे मुक्त पुरुषो की उत्पत्ति होती है।

हिमगिरिकन्या का निश्वास भी हिमवत् शीतल होना चाहिए जिसके स्पर्श से ओस-कण तुरन्त मुक्तामणियो के सदृश जम जाते है। शीतल निश्वास से परम शान्ति का भी अभिप्राय है जिसके स्पर्श-मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।

यदि किसी मनुष्य का निश्वास शीतल चलने लगे तो वह उसकी निकटस्थ मृत्यु का सूचक है। यहाँ भगवती का निश्वास शीतल कहा गया है। भगवती के परम शान्तिमय अन्तर्हृदय का यह पराक्रम है जिससे मृत्यु को भी भय लगता है। उस निश्वास के स्पर्श मात्र से उपासक शीघ्र जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते है।

अलङ्कार—यहाँ रूपक अलङ्कार है।

ओष्ठों का ध्यान—

> **प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः**
> **प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।**
> **न बिम्बं तद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं**
> **तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया ॥६२॥**

पदयोजना—हे सुदति ! तव प्रकृत्या आरक्तायाः दन्तच्छदरुचेः सादृश्यं प्रवक्ष्ये। विद्रुमलता फलं जनयतु। बिम्बं पुनः तद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं कलयापि तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत।

अर्थ—हे सुन्दर दाँतो वाली भगवती ! स्वाभाविक लाल रङ्ग के तेरे होंठो की शोभा का सादृश्य करने वाले पदार्थों के नाम कहता हूं। मूँगे की लता मे यदि फल आ जाएँ (तो उतने सुन्दर कहे जा सकते हैं) परन्तु बिम्ब

फल तो नहीं, क्योंकि उनकी अरुणिमा तो तेरे बिम्ब की प्रतिबिम्बित अरुणिमा की झलक के सदृश है। यदि उनमे किसी प्रकार तेरे होठों की तुलना भी की जाय तो वे तेरे होठों की सुन्दरता की एक कला के बराबर भी सुन्दर न उतरने से क्या लज्जित नही होंगे ?

व्याकरण—रक्त और शुक्ल वर्ण का वेदागम में सबसे पहले वर्णन हुआ था—

"रक्तशुक्लवर्णपदद्वन्द्वम्"

और—"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्"

और भी—"यानि सौम्यानि शोणानि, शृङ्गाररसभाञ्जि च।
तान्यम्ब शक्तिपातेन सम्पन्नानीति निश्चयः॥"

अलङ्कार—अतिशयोक्ति।

मुस्कान का ध्यान—

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमाम्लरुचयः
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशिनिशि भृशं काञ्जिकधिया ॥६३॥

पदयोजना—[हे भगवति !] तव वदनचन्द्रस्य स्मितज्योत्स्नाजालं पिबतां चकोराणाम् अतिरसतया चञ्चुजडिमा आसीत्, अतस्ते आम्लरुचयः शीतांशोरमृतलहरीं काञ्जिकधिया स्वच्छन्दं निशिनिशि भृशं पिबन्ति।

अर्थ—तेरे चन्द्रवदन की मुस्कान रूपी ज्योत्स्ना (चाँदनी) की प्रचुरता को पीकर, अति मधुर होने के कारण चकोरों की चञ्चु अति रसास्वाद से जड़ हो गई है अर्थात् हट गयी है। इसलिए खट्टे रस के इच्छुक वे चन्द्रमा के अमृत की लहरी को काञ्जी सदृश समझकर प्रतिरात्रि खूब स्वच्छन्द पीते रहते हैं।

व्याख्या—वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमित्यमरः।
"चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियाम्।" इत्यमरः॥

अलङ्कार—अतिशयोक्ति अलङ्कार।

जिह्वा का ध्यान—

> अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाऽऽम्रेडनजपा
> जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा ।
> यदग्रासीनाया स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी
> सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा ॥६४॥

पदयोजना—हे जननि ! तव सा जिह्वा अविश्रान्तं पत्युः गुणगण-कथाम्रेडनजपा जपापुष्पच्छाया जयति, यदग्रासीनायाः सरस्वत्याः स्फटिक-दृषदच्छच्छविमयी मूर्तिः माणिक्यवपुषा परिणमति ।

अर्थ—[हे जननि !] बिना थके पति के गुणानुवाद का बारम्बार जप करने वाली जवाकुसुम की द्युति सदृश लाल जिह्वा की जय है जिसके अग्र-भाग पर आसीन स्फटिक पत्थर की सी शुद्ध कान्तिमयी सरस्वती की मूर्ति के शरीर का वर्ण माणिक्य सदृश परिणत हो गया है ।

व्याख्या—स्फटिक का धर्म है कि उस पर निकटस्थ पदार्थ का रङ्ग झलकने लगता है । इसलिए जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित सरस्वती का स्फटिकवत् स्वच्छ वर्ण जिह्वा के रङ्ग से रक्त दीखने लगता है ।

आगम में भी कहा है—

> "तत एव समुद्भूता तस्यामेव कृतालया ।
> तत्स्वरूपास्तत्प्रतापा नवावरणदेवता ॥"

आम्रेडन द्विस्त्रिरुक्तम् इत्यमर

जपापुष्पच्छाया—"जपा जम्बा तथोण्ड्र स्यान्मन्दारमतिपाटलम्" इति विश्वप्रकाश ।

> रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभि-
> र्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः ।
> विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकला
> विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकवलाः ॥६५॥

पदयोजना—हे मातः ! रणे दैत्यान् जित्वा अपहृतशिरस्त्रैः कवचिभिः निवृत्तैः चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशि-विशदकर्पूरशकलाः तव वदनताम्बूलकवलाः विलीयन्ते ॥

अर्थ—हे माँ ! दैत्यों को रण में जीतकर अपहृत शिरस्त्र और कवचों को उतारकर, शिवजी के निर्माल्य से विमुख जो चण्ड का भाग होता है, स्कन्द, इन्द्र और उपेन्द्र तीनों तेरे मुख के पान के ग्रास को—जिसमें चन्द्रमा जैसे स्वच्छ कर्पूर के टुकड़े पड़े हैं—ग्रहण करते हैं।

व्याख्या—चण्ड शङ्कर के एक गण का नाम है। उसका स्थान नन्दी के दक्षिण हाथ की ओर नन्दी और जलहरी के बीच में होता है। शङ्कर का निर्माल्य चण्ड का ही भाग होता है, दूसरा उसे ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए चण्ड के पास खड़े होकर शङ्कर की पूजा नहीं की जाती। वह सब निष्फल होती है।

पुरस्कार के रूप में मुख के पान के टुकड़ों के देने से भगवती का अपने पुत्रों के प्रति वात्सल्य प्रेम प्रकट होता है।

विपञ्च्या गायन्ती विविधमपदानं पशुपतेः
स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने।
तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्रीफलरवां
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥६६॥

पदयोजना—[हे भगवति !] पशुपतेः विविधम् अपदानं विपञ्च्या गायन्ती त्वया वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने आरब्धे [सति] तदीयैः माधुर्यैः अपलपित-तन्त्रीकलरवां निजां वीणां वाणी चोलेन निभृतं निचुलयति।

अर्थ—पशुपति के विविध अपादानों को वीणा पर गाते समय, तेरे शिर हिलाकर सरस्वती की श्लाघा के वचन कहना आरम्भ करने पर, जो अपनी मधुरता से वीणा के कलरव को फीका करते हैं, सरस्वती अपनी वीणा को कपड़े में लपेट कर रख देती है।

टिप्पणी—"विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी" इत्यमरः

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

चिबुक का ध्यान—

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया।
करग्राह्यं शम्भोर्मुखमुकुरवृन्तं गिरिसुते
कथङ्कारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्यरहितम् ॥६७॥

पदयोजना—हे गिरिसुते ! तुहिनगिरिणा वत्सलतया कराग्रेण स्पृष्ट गिरीशेन अधरपानाकुलतया मुहुरुदस्त शम्भो करग्राह्यम् औपम्यरहित तव मुखमुकुरवृन्त चुबुक ब्रूम ॥

अर्थ—[हे गिरिसुते !] उपमारहित तेरी चिबुक (ठोडी) का वर्णन हम कैसे करें जिसे हिमाचल अर्थात् तेरे पिता ने वात्सल्य प्रेम से अपनी अङ्गुलियों से स्पर्श किया है गिरीश ने अधरपान करने की आकुलता से बार-बार उठाया है और जो उस समय ऐसी प्रतीत होती है माना वह शम्भु के हाथ मे मुख देखने के लिए उठाए हुए दर्पण का दस्ता हो।

व्याख्या—यहाँ वात्सल्य शब्द से पिता आदि की पुत्र आदि मे प्रीति प्रतिभासित होती है। सवज्ञसोमेश्वर ने कहा है—

"पुत्रादौ वात्सल्य पत्न्यादौ प्रेम शिष्यादावनुग्रह अग्रजादौ भक्ति ।
अत्र आदिशब्देन गौणपुत्रगौणपत्नीगौणशिष्यगौणाग्रजा गृह्यन्ते ॥

प्रकृति का मुख दर्पणसदृश है जिसमे शङ्कर का मुख प्रतिभासित हो रहा है।

मैं समझो निर्धार यह जग काँचो काँच सो।
एक ही रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियत जगत् ॥

ब्रूम—'विभाषा कथमि लिङ्च'। इति लिडर्थे सम्प्रधारणाया लट्।

अलङ्कार—यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

ग्रीवा का ध्यान—

> **भुजाश्लेषान्नित्य पुरदमयितु कण्टकवती**
> **तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम् ।**
> **स्वत श्वेता कालागुरुबहुलजम्बालमलिना**
> **मृणालीलालित्य वहति यदधो हारलतिका ॥६८॥**

पदयोजना—[हे भगवति !] तवेय ग्रीवा पुरदमयितु भुजाश्लेषात् नित्य कण्टकवती मुखकमलनालश्रिय धत्ते यत् अध स्वत श्वेता कालागुरुबहुलमलिना हारलतिका मृणालीलालित्य वहति ॥

अर्थ—तेरी ग्रीवा, जो पुरारि की भुजा के नित्य स्पर्श से खुरदरी हो रही है, तेरे मुखकमल को धारण करती हुई कमलनाल (मृणाली) जैसी

सुन्दर लगती है, जो स्वतः तो गौरवर्ण है, परन्तु अधिक समय तक अगरु के गाढ़े लेप से कीचड़ से सनी हुई सी मलिन दीखती है और जिसके नीचे हार पहना हुआ है।

अलङ्कार—यहाँ पूर्वार्ध में निदर्शना और रूपक अलङ्कार है। अङ्गाङ्गि-भाव होने से सङ्कर है। उत्तरार्ध में भी निदर्शना अलङ्कार है।

गले का ध्यान—

गले रेखास्तिस्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे
विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसङ्ख्याप्रतिभुवः।
विराजन्ते नानाविधमधुररागाकरभुवां
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते ॥६९॥

पदयोजना—[हे भगवति!] गतिगमकगीतैकनिपुणे! ते गले तिस्रो रेखाः विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसङ्ख्याप्रतिभुवः नानाविधमधुररागाकरभुवां त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव विराजन्ते।

अर्थ—[हे गति, गमक और गीत में निपुणे!] तेरे गले में पड़ी हुई तीन रेखाएँ जो विवाह के समय बाँधी गई तीन सौभाग्यसूत्रों की लड़ियों से पड़ गई हैं, ऐसा प्रतीत हो रही हैं मानों वे नानाविध मधुर रागरागिनियों के तीनों ग्रामों पर गाने से उनके स्थिति नियम की सीमा के चिह्न हों।

व्याख्या—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार गले में पड़ी हुई तीन रेखाएँ भाग्य रेखाएँ होती हैं।

ललाटे च गले चैव मध्ये चापि वलित्रयम्।
स्त्रीपुंसयोरिदं ज्ञेयं महासौभाग्यसूचकम् ॥

मङ्गलसूत्र महासौभाग्य का सूचक है। विवाह के समय तीन सौभाग्य-सूत्रों की लड़ियाँ बँधी जाती हैं। मङ्गलसूत्र का लक्षण वसिष्ठ जी ने इस प्रकार कहा है—

ब्रह्मविष्णवीशरूपं पुरन्ध्रिवृत्तं त्रितं कृतम्।
त्रिरत्नं रुक्मजं स्त्रीणां माङ्गल्याभरणं विदुः ॥

गृह्यकार ने भी कहा है—

माङ्गल्यतन्तुनानेन बध्वा मङ्गलसूत्रकम्।
वामहस्ते सरं बध्वा कण्ठे च त्रिसरं तथा ॥

गान विद्या के अनुसार प्रत्येक राग में गति, गमक और गीत अङ्ग होते हैं। सङ्गीतशास्त्र में कहा है—

"गतिस्तु रागसङ्गीते स आलापः प्रकीर्तितः।
गमको मुख्यनादस्य परिभाषो रसात्मकः ॥
गीतं प्रबन्धरूढार्थं रञ्जिता रक्तिरुच्यते।"

भरत ने भी कहा है—

गति सङ्गीतगति को कहते हैं। सङ्गीत की दो गतियाँ होती हैं। मार्ग और देशी।

गमक स्वर के कम्प को कहते हैं।

'स्वरस्य गमकः कम्पस्स च पञ्चविधस्स्मृतः।'

गीत धातुमत्स्वात्मक होता है। यह दो प्रकार का होता है।

"वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते।

भगवती तीनों ग्रामों पर गा सकती हैं। इसलिए उनके गले में तीन रेखाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो प्रत्येक ग्राम पर गाने से उनके सुरों की पृथक् पृथक् सीमाएँ बन गई हैं।

अलङ्कार—पूर्वार्ध में अनुमान अलङ्कार है।
उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

चारों भुजाओं का ध्यान—

मृणालीमृद्वीनां तव भुजलतानाञ्चतसृणां
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः।
नखेभ्यः सन्त्रस्यन्प्रथममथनादन्धकरिपो-
श्चतुर्णां शीर्षाणां सममभयहस्तार्पणधिया ॥७०॥

पदयोजना—[हे भगवति!] तव मृणालीमृद्वीनां चतसृणां भुजलतानां सौन्दर्यं सरसिजभवः चतुर्भिर्वदनैः प्रथममथनात् अन्धकरिपोः नखेभ्यः सन्त्रस्यन् समं चतुर्णां शीर्षाणाम् अभयहस्तार्पणधिया स्तौति।

अर्थ—शिवजी के नखों के द्वारा पहिले पुराकाल मे कभी (पांचवां शिर) मथन किए जाने की स्मृति से संत्रस्त होकर चारों, शिरों की एक समान रक्षा के लिए तेरे अभयदान देने वाले हाथ की शरण में समर्पणबुद्धि रखकर मृणाली सदृश कोमल तेरी चारों लता जैसी भुजाओं के सौन्दर्य की ब्रह्मा चारों मुखों से स्तुति किया करते हैं।

व्याख्या—पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के ५ शिर थे जिनका उन्हें बड़ा अभिमान था, इसलिए शिवजी ने रुष्ट होकर उनका शिर अपने नखों से तोड़ डाला था।

"ब्रह्मण: पञ्चमशिर: नखाग्रेणाच्छिनद्धर:"

उस समय की स्मृति से ब्रह्मा सदा भगवती के चारों हाथों की चारो मुखों से स्तुति किया करते हैं।

स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार इस आख्यायिका का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि ब्रह्मा के चारों मुख चार वेदों से प्रकृति के हाथों की कृति का व्याख्यान करते हैं। जब ब्रह्मा को सृष्टि बनाने का अहङ्कार उत्पन्न हुआ तो उसे शिवजी ने तोड़ दिया। वही पाँचवां शिर था।

अलङ्कार—यहाँ काव्यालङ्कार है।

हाथों का ध्यान—

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां
कराणां ते कान्ति कथय कथयामः कथमुमे।
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं
यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षाऽरुणदलम् ॥७१॥

पदयोजना—हे उमे ! नखानामुद्योतै: नवनलिनरागं विहसतां ते कराणां कलयापि साम्यं कथं कथयामः। हन्त कमलं क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारुणदलं यदि कयाचिद् वा कलया साम्यं भजतु।

अर्थ—[हे उमे !] तेरे हाथों की कान्ति को कहो कैसे वर्णन करूँ जिनके नखों की द्युति नवविकसित कमल की अरुणिमा का परिहास करती है। यदि किसी अंश में किसी प्रकार कमल के दलों की अरुणिमा से समानता की भी जाये, तो अरे ! वह तो क्रीड़ा करते समय लक्ष्मी के चरणों में लगी लाक्षा के कारण है।

टिप्पणी—कर —"पञ्चशाखासय पाणि करो हस्ताऽथ तर्जनी"
इति विश्वप्रकाश ।

हन्त—"हन्त हर्षेऽनुकम्पाया वाक्यारम्भविषादयो" इत्यमर

दोनो स्तनों का ध्यान—

सम देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं
तवेदं न खेद हरतु सततं प्रस्नुतमुखम् ।
यदालोक्याशङ्काऽऽकुलितहृदयो हासजनकः
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति ॥७२॥

पदयोजना—हे देवि ! तव मम स्कन्दद्विपवदनपीतम् इद स्तनयुग प्रस्नुतमुख न खेद सतत हरतु यत् आलोक्य आशङ्काकुलितहृदय हेरम्ब हासजनक हस्तेन झटिति स्वकुम्भौ परिमृशति ॥

अर्थ—[हे देवि !] स्कन्द और गणेश जी के पान किये हुए तेरे दोनो स्तन, जिनके मुख से दूध टपक रहा है, सदा हमारे खेद का हरण करें जिनको देखकर पीते समय गणेश जी शङ्का से आकुल हृदय होकर झट अपने ही शिर के कुम्भवत् भागो को टटोलकर हास्यजनक चेष्टा करते हैं ।

व्याख्या—बालक दूध पीते समय माता के स्तना को हाथ से पकडकर दूध पिया करता है, परन्तु गणेश जी गलती से अपने ही शिर को पकडने लगे जिसको देखकर माँ हँस पडी ।

हेरम्ब —रम्बते गजतीति हेरम्ब ।

"रम्बिलबि गर्जाया" मिति रबि धातो अच्' प्रत्यये । 'इदितो नुम् धातो" इति नुमागम हेरम्ब

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकुतुपौ
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि न. ।
पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवधूसङ्गमरसौ
कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ ॥७३॥

पदयोजना—हे नगपतिपताके ! अमू ते वक्षोजौ अमृतरसमाणिक्यकुतुपौ । न मनसि सन्देहस्पन्दो नास्ति । यस्मात्तौ पिबन्तौ अविदितवधूसङ्गमरसौ द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ अद्यापि कुमारौ [भवत] ।

अर्थ—[हे पर्वतराज हिमाचल की पताका सदृश पुत्री !] अमृत रस से भरे माणिक्य के बने कुप्पों अथवा कलशों के सदृश तेरे स्तनों को देखकर हमारे मन में सन्देह का स्पन्द भी नहीं होता क्योंकि उनका दुग्ध पान करने से गणेश जी और स्कन्द दोनों आज भी कुमार ही हैं और उनको स्त्री-सङ्गम का रस विदित नहीं है ।

व्याख्या—ऋद्धि-सिद्धि दोनों गणेश जी की पत्नियों के नाम हैं और स्कन्द के पास देवसेना (देवताओं की सेना) रूपी पत्नी है । वास्तव में ये पत्नियाँ स्त्री वाचक शब्द मात्र शक्तियाँ हैं । गणेश और स्कन्द दोनों नित्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही हैं ।

अलङ्कार—यहाँ काव्यलिङ्ग और रूपक अलङ्कार है ।

वहत्यम्ब स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः
समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम् ।
कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तःशवलितां
प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते ॥७४॥

पदयोजना—हे अम्ब ! ते कुचाभोगः स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः मुक्तामणिभिः समारब्धाम् अमलां हारलतिकां बिम्बाधररुचिभिः अन्तश्शवलितां प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव वहति ॥

अर्थ—[हे माँ !] तेरा कुचभाग (छाती का भाग) जो गजासुर के मस्तक रूपी कुम्भ से निकली हुई मुक्तामणियों की विमल माला पहने हुए है; उस पर तेरे बिम्बसदृश लाल होठों की कान्ति पड़ने से अरुण छाया दीखती है इसलिए वह हार शिव जी की प्रताप-मिश्रित कीर्ति के प्रतीकवत् है ।

व्याख्या—गजकुम्भ में मुक्तामणियां उद्भव होती हैं । सर्वज्ञ सोमेश्वर ने कहा है—

गजकुम्भेषु वंशेषु फणासु जलदेषु च ।
शुक्तिकायामिक्षुदण्डे षोढा मौक्तिकसम्भवः ॥
गजकुम्भे कर्बुराभाः वंशे रक्तसितास्स्मृताः ।
फणासु वासुकेरेव नीलवर्णाः प्रकीर्तिताः ॥
ज्योतिर्वर्णास्तु जलदे शुक्तिकायां सितास्स्मृताः ।
इक्षुदण्डे पीतवर्णाः सरुपा मौक्तिकास्स्मृताः ॥

महाकवियों की उक्ति के अनुसार प्रताप रक्तवर्ण का और कीर्ति श्वेत-वर्ण की होती है। मणियाँ स्वच्छ होने के कारण कीर्ति की प्रतीक है और उनपर चमकने वाला लाल रङ्ग प्रताप का प्रतीक है। स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार गजासुर का वध रूपी प्रताप शङ्कर की शक्ति का प्रताप है और मणियाँ उस प्रताप की कीर्ति के चिह्न हैं।

अलङ्कार— यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

> तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
> पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।
> दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्
> कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥७५॥

पदयोजना—हे धरणिधरकन्ये! तव स्तन्यं हृदयतः [उत्थितः] पयःपारावारः सारस्वतमिव परिवहतीति मन्ये। यत् दयावत्या [त्वया] दत्तं तव [स्तन्यं] द्रविडशिशुरास्वाद्य प्रौढानां कवीनां मध्ये कमनीयः कवयिता अजनि॥

अर्थ—हे धरणिधरकन्ये! मैं ऐसा समझता हूँ कि तेरे स्तनों के दूध का पारावार तेरे हृदय से बहने वाले सारस्वत ज्ञान के सदृश है जिसे पीकर, दयावती होकर तेरे स्तनपान कराने पर द्रविडशिशु ने प्रौढ़ कवियों के सदृश कमनीय कविता की रचना की।

व्याख्या—द्रविडशिशु कौन था? इस पर मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार शङ्कर भगवत्पाद ने अपने लिए ही सङ्केत किया है। कैवल्य शर्मा के अनुसार एक बार बालक शङ्कर को भगवती का पूजन करने का सुअवसर मिला। नैवेद्यार्थ भगवती को दूध अर्पण किया जाता था। शङ्कर भगवत्पाद बचपन के भोलेपन से समझे कि भगवती दूध को प्रतिदिन साक्षात् पिया करती हैं, परन्तु उसे पीते न देखकर वे रोकर प्रार्थना करने लगे। बालक के आग्रह से प्रसन्न होकर भगवती प्रकट हो गयी और सारा दूध पी गयी। शङ्कर भगवत्पाद के पिता नैवेद्य का दूध पुत्र को दिया करते थे अतः भगवती के सारा दूध पी लेने पर बाल शङ्कर रो पड़े। इस पर भगवती को दया आई और बालक को अपने स्तनों का दूध पिलाया। दूध पान करते ही शङ्कर एक उच्चकोटि की कविता में भगवती की स्तुति करने लगे।

अन्य विद्वानों के अनुसार द्रविड़ शिशु काञ्ची देश में उत्पन्न हुआ था। इसलिये वहाँ यह कथा प्रसिद्ध है। "कार्तिकेय एव कुतश्चित् मुनिशापान्मनुष्य-जन्म गन्तुकामः कस्याश्चिद्ब्राह्मण्या दरिद्राया उदराज्जातः, स बालकः षण्मासमात्र एव पितरि भिक्षार्थं बहिर्गते मातरि च पानीयाहरणार्थं नदीं प्रस्थितायामतिदारिद्र्याद् दासदासीजनलोकाभावात् एकः सन् रुदन् कुत्रापि गन्तुमशक्तः क्षुधापीडितः क्रन्दनातुरो भवनाङ्गणोपरि भ्रमन् यदृच्छया गगन-मार्गेण भर्त्रा सह विहरन्त्या पार्वत्याः सकरुणं दृष्टः, तथा च धूलिं परिमृज्य बाष्पमपनीय स्तन्यमम्बया तस्मै बालकाय प्रतिपादितं च भूमौ निक्षिप्य भगवत्यां गतायां तत्क्षणादेव शिशोः वदनारविन्दात् अनन्तकोटिदिव्यकाव्यप्रवाहाः सम्पन्नाः।

कुछ विद्वाजों के अनुसार द्रविड़ शिशु एक सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने कैलाश के पत्थरों पर एक स्तोत्र लिखा। जब शङ्कर भगवत्पाद कैलाशयात्रा को गए तब उन्होंने उसे पढ़ा। इनको स्तोत्र पढ़ते देखकर भगवती के इशारे से सिद्ध ने उसे मिटाना शुरू कर दिया। परन्तु भगवत्पाद ने पूर्व के ४१ श्लोक कण्ठाग्र कर लिए। वही इस स्तोत्र के प्रथम ४१ श्लोक हैं।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

नाभि का ध्यान—

हरक्रोधज्वालाऽऽवलिभिरवलीढेन वपुषा
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः।
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति ॥७६॥

पदयोजना—[हे] अचलतनये! मनसिजः हरक्रोधज्वालावलिभिः अवलीढेन वपुषा गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गः। तस्माद्धूमलतिका समुत्तस्थौ। हे जननि! तां जनः तव रोमावलिरिति जानीते॥

अर्थ—हे अचलतनये! हर के क्रोध से कामदेव ने गहरे सरोवर सदृश तेरी नाभि में जब गोता लगाया, उससे लता सदृश उठने वाले धुएं की जो रेखा बनी, हे जननि! उसे जनसाधारण तेरी नाभि के ऊपर उठने वाली रोमावलि समझते हैं।

व्याख्या—स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार इसका आध्यात्मिक भाव

यह है कि कामोद्दीपन होने पर भ्रूमध्य में शङ्कर का ध्यान करने से, जहाँ उनका ज्ञानरूपी तीसरा नेत्र है, हृदय में उदय होने वाले काम का ताप नाभि चक्र में उतरकर शान्त हो जाता है और अग्नि के पानी में बुझने में धुआँ सा ऊपर उठता है, तद्वत नाभि से हृदय में उठने वाली रोमाञ्च की लता सी उठकर शान्ति प्रदान करती है।

कामदेव ने पुनर्जन्म प्राप्त किया। कहा है—

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयाञ्चकार।
धत्ते तदा प्रभृति देवललाटनेत्रं सत्येन्द्रियैव मुकुलीकृतमिन्दुमौलि ॥

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान्, अतिशयोक्ति सन्देह अलङ्कार है। अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे
कृशेमध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम्।
विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं
तनुभूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरिणीम् ॥७७॥

पदयोजना—[हे] शिवे जननि! तव कृशे मध्ये यदेतत्कालिन्दीतनु-तरङ्गाकृति किञ्चित् [रोमावलिरूप वस्तु] सुधियां तद्भाति कुचकलशयो-रन्तरगतं तनुभूतं व्योम अन्योन्यं विमर्दादेव कुहरिणीं नाभिं प्रविशदिव भाति।

अर्थ—हे शिव, हे जननि! यह जो यमुना की बहुत पतली तरङ्ग के सदृश कटिभाग में किञ्चित् दीख रही है, वह मानो तेरे कुचकलशों के बीच एक दूसरे की रगड़ से पिस-पिस कर पतला होने पर, आकाश तेरी नाभि के बिल में अथवा नाभि में सर्पिणी की तरह प्रवेश कर रहा है।

व्याख्या—यमुना नदी और आकाश दोनों का रङ्ग श्याम है। नाभि में उतरने वाली आकाश रूपी रोमावलि हृदय के सूर्यमण्डल से नीचे उतर रही है, इसलिए उसकी उपमा यमुना नदी की तरङ्ग से दी गई है। यमुना पिङ्गला नाडी को भी कहते हैं जिसका सम्बन्ध प्राण से है और प्राण की क्रिया से ही षट्चक्रवेध होता है। इसलिए कालिन्दीरूपी पिङ्गलागत प्राण की क्रिया से इसकी उपमा दी गई है।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा और निदर्शना अलङ्कार है। इसलिए संसृष्टि है।

स्थिरो गङ्गाऽऽवर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलता-
निजावालं कुण्डं कुसुमशरतेजोहुतभुजः ।
रतेर्लीलाऽगारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते
विलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते ॥७८॥

पदयोजना—हे गिरिसुते ! तव नाभिः स्थिरो गङ्गावर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलतानिजावालं कुसुमशरतेजोहुतभुजः कुण्डं रतेर्लीलागारं गिरिशनयनानां सिद्धेर्विलद्वारं किमपि विजयते ॥

पदयोजना—हे गिरिसुते ! तेरी नाभि की जय है जिसकी उपमा नीचे दिये हुए किसी प्रकार में दी जा सकती है—(१) गङ्गा का स्थिर भंवर (२) तेरे स्तनरूपी विकसित पुष्पों को धारण करने वाली रोमावली रूपी लता के उगने का गमला (३) कामदेव के तेजरूपी अग्नि को धारण करने वाला हवनकुण्ड, (४) रति का क्रीड़ास्थल अथवा (५) गिरीश शङ्कर के नयनों की सिद्धि प्राप्त करने के लिए तप करने की गुफा का द्वार ।

व्याख्या—"तदेव स्यादालवालमावापोऽथ नदी सरित ।" इत्यमरः

यहाँ उल्लेख और अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो
नमन्मूर्तेर्नाभौ वलिषु च शनैस्त्रुटयत इव ।
चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा
समावस्थास्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये ॥७९॥

पदयोजना—[हे शैलतनये !] ते मध्यस्य समावस्थास्थेम्नः चिरं कुशलं भवतु । निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो नमन्मूर्तेर्नाभिवलिषु च शनैः त्रुटिततटिनीतीरतरुणा त्रुटयत इव ।

अर्थ—[हे शैलतनये !] तेरे मध्य भाग की सम अवस्था चिर कुशल रहे; जो स्वाभाविक ही क्षीण है और स्तनरूपी तट के भार से क्लान्त होने के कारण झुकी हुई तेरी मूर्ति के नाभिदेश पर पड़ने वाली वलियों पर शनैः शनैः नदी के तट के वृक्ष के सदृश टूटता सा प्रतीत होता है ।

व्याख्या—कटि का पतला होना और स्तनों का भारी होना स्त्रियों के सौन्दर्य के चिह्न हैं । कालिदास ने भी मेघदूत में यक्षिणी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ॥

कुचौ सद्य स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता ।
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलिलवलीवल्लिभिरिव ॥८०॥

पदयोजना—[हे देवि !] सद्य स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ दोर्मूले कषन्तौ कनककलशाभौ कुचौ कलयता तनुभुवा भङ्गादलमिति वलग्न त्रातु त्रिवलि-लवलीवल्लिभि त्रिधा नद्धमिव ॥

अर्थ—[हे देवि !] काँखो की रगड से झट-पट पसीना आने के कारण जिनके किनारे पर से अङ्गिया फट गई है, सुवर्ण कलश की आभायुक्त तेरे कुचद्वय के हिलने से टूटने से बचाने के लिए अलम् अर्थात् पर्याप्त है, इतना मात्र जुडा हुआ तेरा कटि प्रदेश मानो कामदेव ने लवली वल्लि की वलियों से तीन बार बाँध रखा है ।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार है । अङ्गाङ्गि-भाव होने से सङ्कर है ।

नितम्ब का ध्यान—

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपति पार्वति निजा-
न्नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ।
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥८१॥

पदयोजना—हे पार्वति ! क्षितिधरपति गुरुत्व विस्तार निजात् नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे । अत ते अयं नितम्बप्राग्भार गुरु विस्तीर्णस्सन् अशेषा वसुमती स्थगयति लघुत्व नयति च ॥

अर्थ—[हे पार्वती !] पर्वतराज हिमालय ने अपने नितम्बों से काटकर अपना भारीपन और विस्तार तुझको दहेज में दिये थे, इसलिए तेरे नितम्ब इतने विस्तीर्ण और भारी हैं कि उनके भार से सारी पृथिवी की गति रुक गई है और तेरे विस्तार की अपेक्षा पृथिवी छोटी दीखने लगी है।

टिप्पणी—भाव यह है कि भूमि की प्राकृतिक शोभा हिमाच्छादित पर्वतराज की ही तनुजा है।

हरणरूपेण—"विवाहादिषु यद्देयं सहायो हरणं च तत्" इत्यमरः।

> "कन्यानां परिणये पित्रा वा भ्रातृभिश्च बन्धुभिः स्त्रीधनरूपं यद्देयं तन्निगदन्ति हरणमित्याचार्याः"
>
> इति रुद्रभट्टः।

रघुवंश में इन्दुमतीविवाहप्रसङ्ग में कालिदास ने भी कहा है—

> "सत्त्वानुरूपं हरणीकृतश्रीः"

प्राग्भारः—"प्राग्भारश्चैव भारश्च तथार्थान्तः समार्थकः"

इति विश्वप्रकाशः।

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

ऊरुयुग्म का ध्यान—

करीन्द्रशुण्डानां कनककदलीकाण्डपटली-
मुभाभ्यामुरूभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती।
सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते
विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि ॥८२॥

पदयोजना—[हे गिरिसुते !] भवती करीन्द्रशुण्डानां कनककदली-काण्डपटलीम् उभाभ्यामूरूभ्यां उभयमपि निर्जित्य सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणति-कठिनाभ्यां जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि निर्जित्य विजिग्ये।

अर्थ—[हे गिरिसुते !] आप अपने दोनों ऊरुओं से गजेन्द्रों की सूँडों को और सुवर्ण के बने हुए केले के लम्बे स्तम्भों को जीतकर पति को प्रणाम करते-करते कठिन बने हुए दोनों सुन्दर गोल घुटनों से बुद्धिमान् हाथी के दोनों [मस्तक के) कुम्भों को भी पराजित कर रही है।

टिप्पणी—'उमाभ्यामूरुभ्या' से अभिप्राय सक्थिदण्ड से है ।

"सक्थिक्लीवे पुमान् रूपम्" इत्यमर

विजिग्ये—"विपराभ्या जे" इति विपूर्वस्य जयतेरात्मनेपदे लिटि रूपम्—

अलङ्कार—यहाँ उपमा अलङ्कार है ।

जङ्घाओं का ध्यान—

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निषङ्गौ जङ्घे ते विषमविशिखो बाढमकृत ।
यदग्रे दृश्यन्ते दशशरफलाः पादयुगली-
नखाग्रच्छद्मान सुरमुकुटशाणैकनिशिताः ॥८३॥

पदयोजना—[हे गिरिसुते !] विषमविशिख रुद्र पराजेतु द्विगुणशर-गर्भौ निषङ्गौ ते जङ्घे अकृत बाढम् । यदग्रे पादयुगलीनखाग्रच्छद्मान सुर-मुकुटशाणैकनिशिता दशशरफला दृश्यन्ते ॥

अर्थ—[हे गिरिसुते !] तेरी दोनों पिण्डलियाँ रुद्र को जीतने के लिए दुगुने बाणो से भरे कामदेव के दो तरकसो के समान हैं जिनके दस अग्रफल पैरों की १० अङ्गुलियो के नखो के अग्रभाग के रूप मे दीख रहे हैं जो देवताओ के मुकुटरूपी सान पर पैनाए गए हैं ।

टिप्पणी—कामदेव के ५ बाण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—५ विषय है । भगवती के चरणों मे ५ सामान्य और ५ दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सहित १० बाण हैं। योगदर्शन मे दिव्य विषयो का वर्णन मिलता है—

"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनस स्थितिनिबन्धिनी' योगदर्शन १ ३५

योगी को सामान्य और दिव्य योग देकर चित्त को एकाग्रता प्रदान करता है ।

दशाशरफलाः—

"फलं प्रयोजने क्लीबं तल्लणां प्रसवेऽपि च ।
शराग्रे तु फलाः पुंसि कृता लोहशलाकया ॥"

इति विश्वः ।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ ।
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणिरुचिः ॥८४॥

पदयोजना—[हे जननि !] तव यौ चरणौ श्रुतीनां मूर्धानः शेखरतया दधति । हे मातः ! एतौ चरणौ ममापि शिरसि दयया धेहि । ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी ययोः लाक्षालक्ष्मीः अरुणहरिचूडामणिरुचिः ॥

अर्थ—[हे माँ !] तेरे चरण जो श्रुतियों की मूर्धा पर शिखरवत् रखे हैं, दया करके उनको मेरे सिर पर भी रख दे, जिनका चरणोदक शङ्कर के जटाजूट से निकली हुई गङ्गा है और जिनके तलुवों में लगी लाक्षा की कान्ति हरि के चूड़ा (केशों) में धारण की हुई अरुण मणि की कान्ति के सदृश है ।

टिप्पणी—भगवती ने अपने चरण श्रुतियों की मूर्धा पर शिखरवत् रखे है । वसिष्ठसंहिता में भी कहा है—

"नमो देव्यै महालक्ष्म्यै श्रियै सिद्ध्यै नमो नमः ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानवेदकैः पूजिताङ्घ्रये ॥"

और भी—

"नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै शिवायै विश्वमूर्तये ।"

और भी—

"प्राह ताः प्रति तादृग्भिः वचोभिरमरेश्वरी ॥"

लाक्षा—"राक्षा लाक्षा जतु क्लीबे यावोऽलक्तो द्रुमामयः" इत्यमरः

पाद्यं—पाद्यं पादवारिणि इत्यमरः ।

अलङ्कार—यहाँ रूपक अलङ्कार है ।

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते ।
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते
पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केलितरवे ॥८५॥

पदयोजना [हे भगवति !] तव नयनरमणीयाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते पदयोरस्मै द्वन्द्वाय नमोवाकं ब्रूम: पशूनामीशान: यदभिहननाय स्पृहयते प्रमदवनकङ्केलितरवे अत्यन्तम् असूयति ॥

अर्थ—हम तेरे इन दोनों चरणों को प्रणाम करते हैं जो नयनों को रमणीय हैं, जिन पर लाक्षा की तीव्र कान्ति चमक रही है और जिनके अभिहनन की स्पृहा से पशुपति तेरे प्रमोदवन के अशोक वृक्ष से अनन्य असूया रखते हैं।

टिप्पणी—पद्मिनी स्त्री के पादप्रहार से अशोक वृक्ष प्रसन्न होता है। पशुपति भी वीतशोक होने के कारण अशोक हैं। जीवों को पशु कहते हैं क्योंकि वे संसार की आसक्तिरूप राग के पाश में बन्धे हैं। शिव को पशुपति भी इसी अभिप्राय से कहते हैं—

पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ।
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तः पशुपतिः ॥

स्वामी विष्णु तीर्थ जी के अनुसार मनुष्य में जीव-भाव और शिवभाव साथ-साथ रहते हैं। इसलिए बद्ध जीव का अन्तरात्मारूपी शिव सदा असङ्ग होने पर भी भगवती के पादप्रहार से अपने को शोकरहित अनुभव करने की स्पृहा सदा किया करता है।

कङ्केलि—कङ्केलिः कामकेलिः स्यादशोको रक्तपुष्पकः इति विश्वः ।

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते ।
चिरादन्तःशल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता
तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा ॥८६॥

पदयोजना—[हे भगवति !] मृषा गोत्रस्खलनं कृत्वा अथ वैलक्ष्य-नमितं भर्तारं ते चरणकमले ललाटे ताडयति सति ईशानरिपुणा चिरात् दहनकृतम् अन्तश्शल्यम् उन्मूलितवता तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितम् ।

अर्थ—तेरे गोत्र का अपमान करने से लज्जित नीचे नेत्र किए हुए भर्ता के ललाट पर तेरे चरण कमलों का ताडन होने पर ईशानरिपु (कामदेव) ने अपना बदला देखकर, जलाये जाने के कारण चिरकाल से हो रहे अपने अन्तर्दाह को निकालते हुए तेरे नूपुरों के बजने के क्वणत्कार रूपी किलकिलाहट की हर्षध्वनि की ।

टिप्पणी—गोत्र का अर्थ इन्द्रियसंयम भी है क्योंकि गां त्रायते इति गोत्रम् । गोत्रस्खलन से अभिप्राय इन्द्रिय संयम की गिरावट से है । वैलक्ष्य-नमित उस दृष्टि को कहते हैं जिसमें वह लक्ष्य रहित नीचे को झुकी होती है । शाम्भवी मुद्रा में भी नेत्रों की दृष्टि ऐसी ही रहती है ।

भर्तार पद से अभिप्राय देहाभिमानी, देह का पोषण करने वाला भर्ता, महेश्वर ही है ।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

गीता १३, २२

कामदेव सदा भगवती का आश्रय लेकर अपना कार्य करता है और ऐसा होता है कि मानो भगवती कामदेव की ही प्रतिमूर्ति है ।

समाधिकाल में काम शिव का शत्रु है, परन्तु सृष्टिकाल में वही शक्ति के रूप में शिव की अर्धाङ्गिनी का सहयोगी बन जाता है ।

स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार "मन के लय और व्युत्थान का स्थान आज्ञा चक्र के ऊपर है । अनाहत में ईश्वर, विशुद्ध में सदाशिव और आज्ञा में शिव का स्थान है । शाम्भवी मुद्रा को समाधि का द्वारोद्घाटन कहना चाहिए । व्युत्थान के समय जब शक्ति नीचे उतरती है और उसके नूपुरों के शब्द में कामदेव के हास्य की प्रतिध्वनि बतायी गयी है । शाम्भवी मुद्रा के अभ्यासी के कामवासना रूपी अन्तर्दाह का उन्मूलन हो जाता है ।"

किलकिलशब्द सिंहनाद को कहते हैं—

"जितशात्रवदर्पस्य प्रतिज्ञापूरणीकृत ।
वीरस्य गर्जितं सिंहनाद किलकिलो मत ॥"

इति विश्व ।

अलङ्कार -यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ
निशायां निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ ।
परं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम् ॥८७॥

पदयोजना—[हे जननि !] हिमगिरिनिवासैकचतुरौ, निशि परभागे च विशदौ समयिना श्रियमतिसृजन्तौ त्वत्पादौ हिमानीहन्तव्य निशाया निद्राणं पर लक्ष्मीपात्र सरोज जयत इह किं चित्रम् ।

अर्थ—[हे जननि !] तेरे दोनो चरण कमल पर जय प्राप्त कर रहे है, आश्चर्य क्या है ? क्योकि कमल बरफ से मर जाता है, परन्तु तेरे चरण हिमगिरि पर निवास करने मे कुशल हैं । कमल रात को सो जाता है, परन्तु तेरे चरण दिन-रात विशद रहते हैं । वह दिन मे लक्ष्मी का पात्र रहता है पर तेरे चरण समयाचार के उपासको को खूब लक्ष्मी देते है ।

टिप्पणी— हिमानी हिमसन्तति इत्यमर
समयिन —"अत इनिठनौ" इति इनिप्रत्यय

अलङ्कार— यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है ।

पदं ते कीर्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलाम् ।
कथञ्चिद्बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदो
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥८८॥

पदयोजना—[हे देवि !] कीर्तीनां पद विपदामपद ते प्रपद सद्भि कठिन-कमठीखर्परतुला कथ नीतम् ? दयमानेन मनसा पुरभिदा उपयमनकाले बाहुभ्या यदादाय कथञ्चिद् दृषदि न्यस्तम् ?

अर्थ—[हे देवि !] तेरा पद कीर्तियों का अपद (स्थान) है और विपदाओं का अपद है। न जाने सत्पुरुषों ने उसकी तुलना कछुए की कठिन खोपड़ी से कैसे की है। वह इतना कोमल है कि विवाह के समय पुरारि ने दयार्द्र मन से किसी प्रकार (बड़ी हिचकिचाहट और सङ्कोच के साथ) दोनों हाथों से उठाकर उसे पत्थर पर रखा था।

टिप्पणी—विवाह में वर वधू के एक चरण को अपने हाथों से उठाकर पत्थर पर रखकर कहता है कि हे देवि ! तू धर्म पालनार्थ अपना चित्त पत्थर की तरह दृढ़ रखना।

अलङ्कार—यहाँ अन्वय अलङ्कार है।

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभि-
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ।
फलानि स्वस्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ ॥८९॥

पदयोजना—[हे चण्डि !] किसलयकराग्रेण स्वस्थेभ्यः फलानि ददतां दिव्यानां तरूणां दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियम् अनिशमह्नाय ददतौ ते चरणौ नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभिः नखैः हसत इव।

अर्थ—[हे चण्डी !] तेरे दोनों चरण अपने नखों से कल्पवृक्षों का परिहास-सा कर रहे हैं, जो नख देवाङ्गनाओं के कररूपी कमलों को (हाथ जोड़ते समय) बन्द करने के लिए संध्या में दस चन्द्रमा के सदृश हैं। कल्पवृक्ष तो स्वर्ग में रहने वाले स्वावलम्बी देवताओं को ही अपने पल्लव रूपी कराग्रों से फल देते हैं, परन्तु तेरे चरण दरिद्रियों को निरन्तर, तुरन्त और बहुत धन देते रहते हैं।

अलङ्कार—यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति।
तवास्मिन्मन्दारस्तवकसुभगे यातु चरणे
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम् ॥९०॥

पदयोजना—(हे भगवति !) दीनेभ्य आशानुसदृशी श्रियम् अनिश ददाने अमन्द सौन्दर्यप्रकरमकरन्द विकिरति मन्दारस्तवकसुभग अस्मिन् तव चरणे करणचरण मज्जीव निमज्जन् षट्चरणता यातु ॥

अर्थ—*इस तेरे चरण मे जो मन्दार वृक्ष के पुष्पो के स्तबक जैसा सुन्दर* है, दीनो को उनकी आशा के अनुसार निरन्तर लक्ष्मी देता रहता है, सौन्दर्य-राशि के मकरन्द को खूब फैलाता रहता है और मन्दार के पुष्पो के स्तबक सदृश सुभग है, उसम मरा ५ ज्ञानेन्द्रिय और १ अन्त करण रूपी ६ चरण वाला यह जीव ६ चरणों वाला मधुकर बनकर डूबा रहे।

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति उपमा और परिणाम अलङ्कार है।
अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है।

चरणो की गति का ध्यान—

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनस-
श्चरन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति।
अतस्तेषां शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणित-
च्छलादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते ॥६१॥

पदयोजना—हे चारुचरिते ! पदन्यासक्रीडापरिचयम् इव आरब्धुमनस भवनकलहसा चरन्त ते खेल न जहति, अत चरणकमल सुभगमणिमञ्जीर-रणितच्छलात् तेषा शिक्षाम् आचक्षाणम् (इव) ॥

अर्थ—हे चारुचरिते ! ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे भवन के राजहस *चलते समय तेरी पदन्यासक्रीडा (चाल) का परिचय प्राप्त करने के लिए तेरे* खेल का त्याग नही करते (अर्थात् तेरे पीछे-पीछे तेरी तरह कदम उठाकर चलते हैं और वे इस खेल का त्याग नही करते) और तेरे चलते समय चरण कमलो मे लगी *मणियो-युक्त नूपुरो की झङ्कार का शब्द मानो उनको चलने* की शिक्षा का उपदेश कर रहा है।

टिप्पणी—स्वामी विष्णुतीर्थ जी के अनुसार परमहस महापुरुषो की *उन्मत्त गति-विधि मे शक्ति की क्रीडायुक्त मस्तीभरी चाल का आभास है।* जीवन्मुक्त परमहस ही भगवती के भवन के राजहस हैं।

कलहंस राजहंस को कहते हैं—

"राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः ।" इत्यमरः

जहति—'ओहाक् त्यागे" इति धातोः लटि बहुवचने रूपम्—जहाति, जहीतः जहति ।

चारुचरितम् का अर्थ मनोहरसौभाग्य है—

"चरितं तु चरित्रं स्यात् ।"

इति विश्वः ।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार है, अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है ।

पलङ्ग का ध्यान—

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः
शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः ।
त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया
शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ॥९२॥

पदयोजना—[हे भगवति !] ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः गताः; शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटस्सन् त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया शरीरी शृङ्गारी रस इव दृशां कुतुकं दोग्धि ॥

अर्थ—ब्रह्मा, हरि, रुद्र और ईश्वर द्वारा रक्षा किए जाने वाले (क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर और अनाहत चक्र) तेरे मञ्च के चार पाए हैं अर्थात् चारों तेरा मञ्च बनाते हैं । उस पर बिछी हुई स्वच्छ छाया की बनी हुई कपटरूपी माया की चादर शिव है जो तेरी प्रभा के झलकने के कारण अरुण दीख पड़ने से ऐसी प्रतीत होती है मानों शृङ्गार रस शरीरी बनकर दृष्टि में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है ।

टिप्पणी—यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

पूरे शरीर का ध्यान—

अराला केशेषु प्रकृतिः सरला मन्दहसिते
शिरीषाभा गात्रे दृषदिव कठोरा कुचतटे ।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये
जगत् त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा ॥९३॥

पदयोजना—शम्भो काचित् केशेषु अराला मन्दहसित प्रकृतिसरला गात्रे शिरीषाभा कुचतटे दृषदिव कठोरा मध्ये भृश तन्वी वरारोहविषये पृथु अरुणा करुणा जगत् त्रातु जयति ।

अर्थ—*शम्भु की करुणा (अर्थात् दया) की, जगत् की रक्षा करने के लिए मानो जो काचित् अरुणा है सर्वत्र जय हो रही है जिसके अर्थात् अरुणा* भगवती के केश स्वाभाविक सरलता लिए हुए घुघराले अर्थात् कुटिल हैं, गात्र अथवा चित्त शिरीष की आभा लिए हुए हैं, कुच पत्थर सदृश कठोर हैं, मध्य मे कटिभाग अति पतला है और नितम्ब भारी है ।

टिप्पणी—*अभिप्राय यह है कि भगवती का शरीर मानो शम्भु की दया का अवतार है जो जगत् की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुआ है । शिव स्वरूप गुरु का अनुग्रह शम्भु का ही अनुग्रह है जिससे शिष्य मे शक्ति का* उत्थान होता है इसलिए गुरु कृपा, शक्ति की अभिव्यक्ति और शम्भु की करुणा तीनो पर्यायवाची है ।

अराला—'अराल वृजिन जिह्मामूर्तिमत् कुञ्चित नतम्' इत्यमर

आरोहो— आरोहो जघन श्रोणी नितम्ब स्त्रीकटितट

इति विश्व

अलङ्कार—यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

शृङ्गार के डिब्बे का ध्यान—

> **कलङ्क कस्तूरी रजनिकरबिम्ब जलमय**
> **कलाभि कर्पूरैर्मरकतकरण्ड निबिडितम् ।**
> **अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिद रिक्तकुहर**
> **विधिर्भूयो भूयो निबिडयति नून तव कृते ॥६४॥**

पदयोजना—हे भगवति ! कलङ्क कस्तूरी रजनिकरबिम्ब जलमय कर्पूरै निबिडित मरकतकरण्डम् । अत इद प्रतिदिन त्वद्भोगेन रिक्तकुहर विधि भूयोभूय तव कृते निबिडयति नूनम् ।

अर्थ—*चन्द्रबिम्ब एक मरकत मणि के बने हुए डिब्बे के सदृश है, उसका कलङ्क कस्तूरी का काला रङ्ग है और चमकती हुई कलाएँ कर्पूर सदृश* हैं। दोनो को जल मे पीसकर तेरे आभोग के लिए डिब्बो मे भरकर रखा हुआ है, जो प्रतिरात्रि खच होता रहता है और ब्रह्मा उसे फिर दिन मे बार बार भरता रहता है।

टिप्पणी—पुराण में सोमोत्पत्ति के बारे में कहा है—

"प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः"।

और भी—

"त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवनेऽखिलत्वम्।
त्वं स्वादुता च सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात्॥"

और भी—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणो भा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोर्भाः॥

नीचे चरणों के पास सूर्यमण्डल और ऊपर विशुद्ध चक्र में १६ कलायुक्त चन्द्रमण्डल दोनों भगवती के शृङ्गार के साधन हैं।

अलङ्कार - यहाँ अतिशयोक्ति और अपह्नव अलङ्कार है।

**पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा।
तथा ह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां
तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाऽऽद्याभिरमराः॥९५॥**

पदयोजना – हे भगवति ! पुरारातेरन्तपुरमसि । ततस्त्वच्चरणयो-स्सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा। तथा हि—एते शतमखमुखाः अमराः तव द्वारोपान्तस्थितिभिः अणिमाद्याभिस्सह अतुलां सिद्धिं नीताः।

अर्थ – तू त्रिपुरारि के अन्तःपुर की रानी है, इसलिए तेरे चरणों की सपर्या पूजा की मर्यादा चञ्चल इन्द्रियों वाले मनुष्यों को सुलभ नहीं और इन्द्र की प्रमुखता में रहने वाले ये देवगण तेरे द्वार के निकट खड़ी रहने वाली अणिमादि की अतुल सिद्धियों तक ही पहुँच पाते हैं।

टिप्पणी– अणिमा आदि ये आठ सिद्धियाँ हैं—

इस श्लोक में असंयमी और सिद्धियों की कामना रखने वाले मनुष्यों की निन्दा की गई है।

कलत्रं वैधात्रं कतिकति भजन्ते न कवयः
श्रियो देव्या को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः।
महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे
कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभ ॥९६॥

पदयोजना—हे सति ! वैधात्र कलत्र कतिकति कवय न भजन्ते। श्रियो देव्या कैरपि धनै को वा पति न भवति। हे सतीनामचरमे ! महादेव हित्वा तव कुचाभ्याम् आसङ्ग कुरवकतरोरप्यसुलभ ॥

अर्थ—*विधाता की स्त्री सरस्वती को क्या कितने ही कविजन नहीं भजते* और कौन थोडा सा भी धनवान होकर लक्ष्मी का पति नहीं होता ? परन्तु हे सती ! सतियो मे श्रेष्ठ ! महादेव को छोड कर तेरे कुचो का सङ्ग तो कुरबक तरु को भी दुर्लभ है।

टिप्पणी—पार्वती के पति तो महादेव ही है। इससे पातिव्रत्यमहिमा दृष्टिगोचर होती है।

धन—"हिरण्य द्रविण द्युम्न रुक्म रिक्थ धन वसु"

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरे पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया काऽपि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि ॥९७॥

पदयोजना—हे परब्रह्ममहिषि ! आगमविद त्वामेव द्रुहिणगृहिणी गिरा देवीमाहु। *त्वामेव हरे पत्नी पद्मामाहु। त्वामेव हरसहचरीम् अद्रितनया-माहु। त्व तुरीया कापि दुरधिगमनिस्सीममहिमा महामाया सती विश्व* भ्रमयसि ॥

अर्थ—हे परब्रह्म की महाराज्ञि ! शास्त्रो के जानने वाले ब्रह्मा की पत्नी को सरस्वती वाग्देवी कहते है, विष्णु की पत्नी को पद्मा (कमला) कहते हैं और हर की सहचरी को पार्वती कहते हैं। परन्तु तू महामाया कोई चौथी ही हैं। तेरी महिमा असीम है, तने सारे विश्व को भ्रम म डाला हुआ है। तुझको *जानना कठिन है।*

टिप्पणी—मनोभाव स्तोत्र मे कहा है—

> "नान्यं निषेवे न तु चान्यमीडे न चापरं दैवतमर्चयामि ।
> नाहं शिवां तां परमार्थरूपां श्रीसुन्दरीं चेतसि विस्मरामि ॥"

स्वामी विष्णुतीर्थ के अनुसार सरस्वती का बीजमन्त्र ऐं, लक्ष्मी का श्रीं, पार्वती का क्लीं और महामाया का ह्रीं है। वाग्भव कूट का तीसरा अक्षर शक्ति का वाचक है और वर्णमाला का चौथा अक्षर होने से तुरीय पद समाधि का द्योतक है और वह सब बीजाक्षरों के अन्त में रहता है। अनुस्वार भी शक्ति के साथ सदा रहता है, वह शिवात्मक है। इसे कामकला कहते हैं।

प्रार्थना—

> **कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं**
> **पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम् ।**
> **प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया**
> **यदाधत्ते वाणीमुखकमलताम्बूलरसताम् ॥९८॥**

पदयोजना—हे मातः ! तव कलितालक्तकरसं चरणनिर्णेजनजलं विद्यार्थी अहं कदा काले पिबेयं कथय। तच्च प्रकृत्या मूकानां [वक्तुं श्रोतुं अशिक्षितानाम्] अपि च कविताकारणतया वाणीमुखकमलताम्बूलरसतां कदा धत्ते।

अर्थ—हे माँ ! बताओ, वह समय कब आयेगा जब मैं एक विद्यार्थी, तेरे चरणों का धुला हुआ जल जो लाक्षारस के रङ्ग मे लाल हो रहा है, पान करूँगा जिसमें सरस्वती के मुखकमल मे निकले हुए पान की पीक के सदृश, जन्म के गूँगे को भी कविताशक्ति प्रदान करने की क्षमता है।

अलङ्कार—यहाँ उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

> **सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते**
> **रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।**
> **चिरञ्जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः**
> **परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥९९॥**

पदयोजना—[हे भगवति !] त्वद्भजनवान् सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरि-

सपत्न्‌ [सन्] विहरते रम्येण वपुषा रते पातिव्रत्यं शिथिलयति । क्षपित-पशुपाशव्यतिकर चिरञ्जीवन्नेव परानन्दाभिख्य रस रसयति ॥

अर्थ—तेरा भजन करने वाला मनुष्य सरस्वती और लक्ष्मी दोनों से युक्त होकर ब्रह्मा और हरि के सपत्निदाह का पात्र बनकर विहार करता है और सुन्दर रम्य शरीर से रति (कामदेव की स्त्री) के भी पातिव्रत्य धर्म को शिथिल करता है अर्थात् वह विद्वान्, धनाढ्य और सुन्दर रूप लावण्य युक्त शरीर वाला हो जाता है तथा पशुपाश के दुःखों को नष्ट करके चिरकाल तक परमानन्द के रस का रसास्वाद लेता हुआ जीवित रहता है।

पशुपाश—बन्धन में पड़ा हुआ जीव पशु कहलाता है। (पश् बन्धने)

आठ पाशों का भी वर्णन मिलता है। वे हैं—घृणा, लज्जा, भय, निन्दा, शोक, जाति, कुल और शील।

पाश का अर्थ अविद्या भी है। इसलिए कहा है।

"अविद्येति पाश प्र मुमोक्त्वेतन्नम
पशुभ्य पशुपतये करोमि ॥"

जीवन्मुक्त—जीवन्मुक्त अविद्या से निवृत्त होकर भी कुलालचक्रभ्रमण-न्याय से शरीर धारण करते हैं।

"सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्धृतशरीरः ॥"

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम् ॥१००॥

पदयोजना—हे वाचां जननि ! यथा प्रदीपज्वालाभिः दिवसकर-नीराजनविधिः, यथा चन्द्रोपलजललवैः सुधासूतेरर्घ्यरचना [भवति], [यथा]

स्वकीयैरम्भोभिस्सलिलनिधिसौहित्यकरणं भवति, [तथा] त्वदीयाभिः वाग्भिरेव तवेयं स्तुतिः ॥

अर्थ – हे जननि ! तेरी प्रदान की हुई वाक् शक्ति से की गई इस स्तुति के शब्द इस प्रकार हैं जैसे दीपक ज्वालाओं से सूर्य की आरती उतारना अथवा चन्द्रकान्त मणि से टपकते हुए जल कणों से चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करना अथवा समुद्र का सत्कार उसी के जल से करना है ।

टिप्पणी—"सौहित्यं तर्पणं तृप्तिः" इत्यमरः.

अलङ्कार—यहाँ प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त अलङ्कार हैं ।

यन्त्र

श्लोक नं १
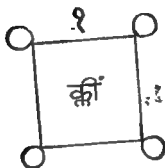
१२ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल —आरम्भ किए हुए सब कार्यों मे विजय।

श्लोक न० २

२

ह्रीं
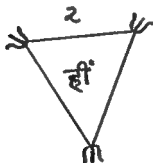
५१ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—प्रकृति पर विजय।

श्लोक नं० ३
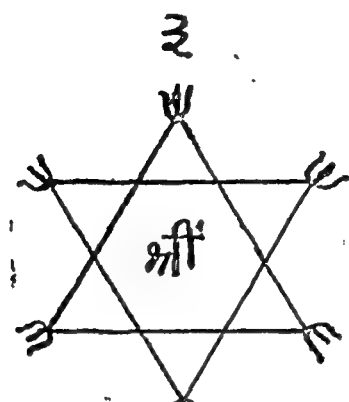
श्लोक नं० ४
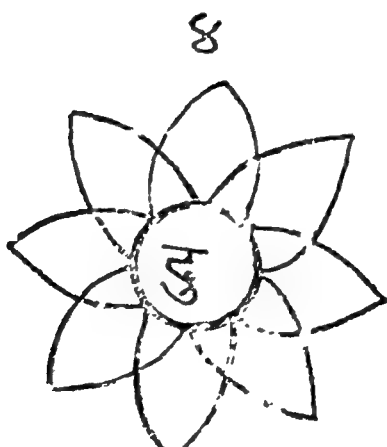
श्लोक नं० ५
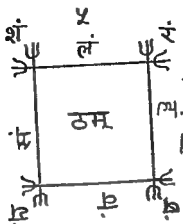
आठ दिनों तक प्रतिदिन २००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—ताम्र धातु
लाभप्रद फल—सर्वहृदयग्राह्यता

श्लोक सं० ६

२१ दिनों तक प्रतिदिन ५०० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सन्तान प्राप्ति

श्लोक सं० ७
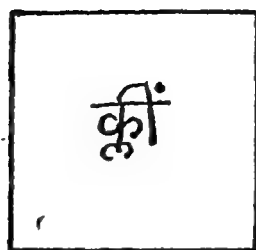
१२ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—शत्रु पर विजय प्राप्ति

श्लोक सं० ८
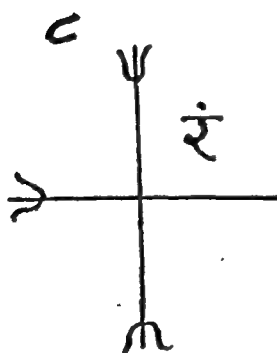
१२ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—लाल चन्दन का लेप
लाभप्रद फल—रुकावटों से छुटकारा और आरम्भ किए हुए कार्यों में सफलताप्राप्ति।

श्लोक सं० ६

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु और वह तीव्र गन्धयुक्त पदार्थ से कलुषित हो।
लाभप्रद फल—पञ्चतत्त्वों में श्रेष्ठता प्राप्ति।

श्लोक नं० १०

१०

ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

६ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु और वह लाल रेशमी धागे से बधा हो।
लाभप्रद फल—यौन सम्बन्धी वीर्य में वृद्धि

श्लोक सं० ११
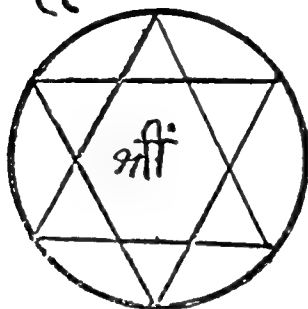
आठ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु।

लाभप्रद फल—सम्पन्नता।

श्लोक सं० १२

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—जल

लाभप्रद फल—कवित्व शक्ति में वाग्वैभव
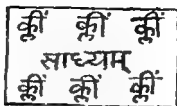
श्लोक सं० १३

६ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण या सीसा धातु
लाभप्रद फल—स्त्रियों को आकर्षित करने की शक्ति
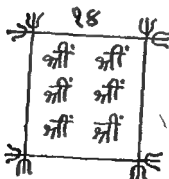
श्लोक सं० १४

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ – सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—अकाल और महामारी से निवारण

श्लोक सं० १५

४१ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—जल
लाभप्रद फल—ज्ञान और काव्यशक्ति में दक्षता।

श्लोक सं० १६
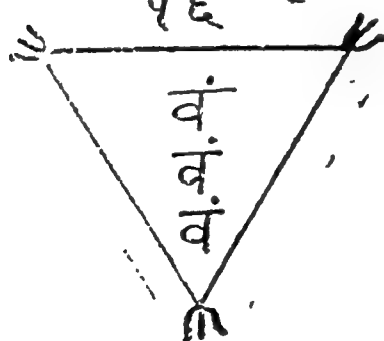
४१ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु।
लाभप्रद फल—धर्म ग्रन्थों और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान।

श्लोक सं० १७
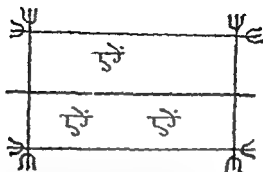
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ— स्वर्ण धातु
लाभप्रद फल— सभी कलाओं और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यापक ज्ञान।

श्लोक सं० १८
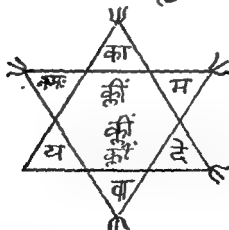
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—स्त्रियों को मुग्ध करने की शक्ति

श्लोक सं० १९
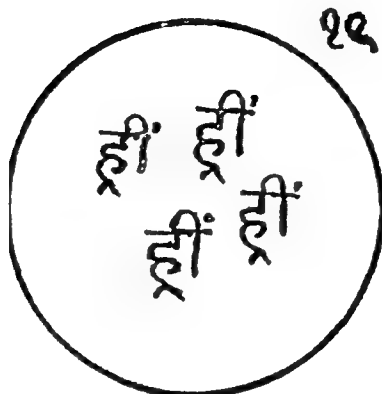
२५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—स्त्रियों, पशुओं, राक्षसों और शासकों को मुग्ध करने की शक्ति।

श्लोक सं० २०

२५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—पवित्र भस्म या जल
लाभप्रद फल—विष के प्रभाव को नष्ट करने की और विष से छुटकारा पाने की शक्ति।

श्लोक सं० २१

२१ दिना तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—
सुवर्ण या रजत धातु
लाभप्रद फल दुश्मनी और क्रोध को —— की शक्ति एव सत्र पर विजय प्राप्त करना।

श्लोक सं० २२

२२
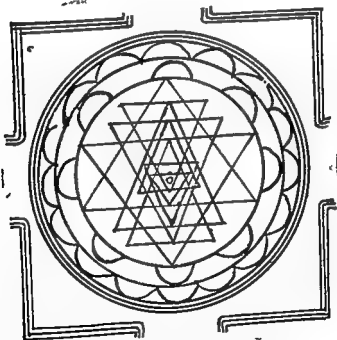
४५ दिना तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ – सुवर्ण धातु और उनकी पवित्र स्थानो पर पूजा करनी चाहिए
लाभप्रद फल सभी इच्छाओं की पूर्ति अभ्युदय एव प्रभुत्वशक्ति की प्राप्ति।

श्लोक संख्या २३
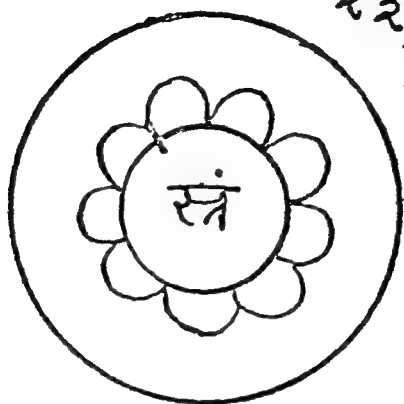
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें ।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ - सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—ऋण एवं संकट से मुक्ति

श्लोक सं० २४
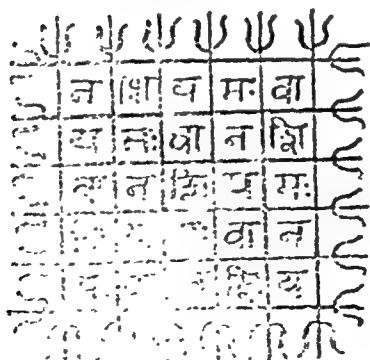
२० दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें ।
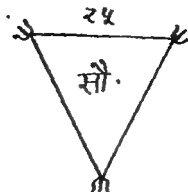
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ - सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल -- सभी अशुभ शक्तियों का अपसारण

श्लोक सं० २५

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—व्यवसायी पेशा में प्रगति
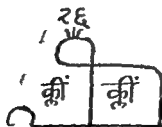
श्लोक सं० २६

६ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—शत्रुओं का नाश

श्लोक सं० २७
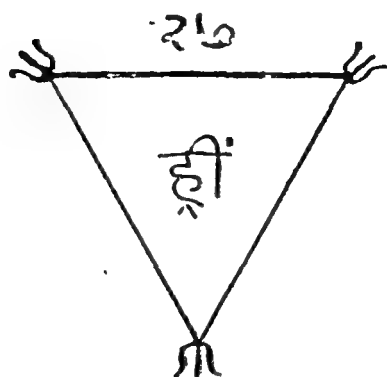
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ — सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—आत्मज्ञान और ईश्वर दर्शन

श्लोक सं० २८
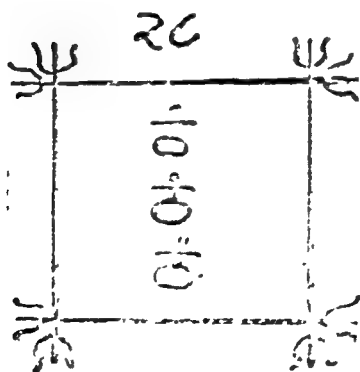
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—अदृष्ट मृत्यु से रक्षा

श्लोक सं० २९
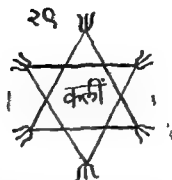
४५ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—दुष्ट शत्रुश्रो को सद्‌मित्रो मे बदलना

श्लोक सं० ३०

६६ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु।
लाभप्रद फल—आधिदैविक शक्तियो की प्राप्ति

श्लोक सं० ३१

३१
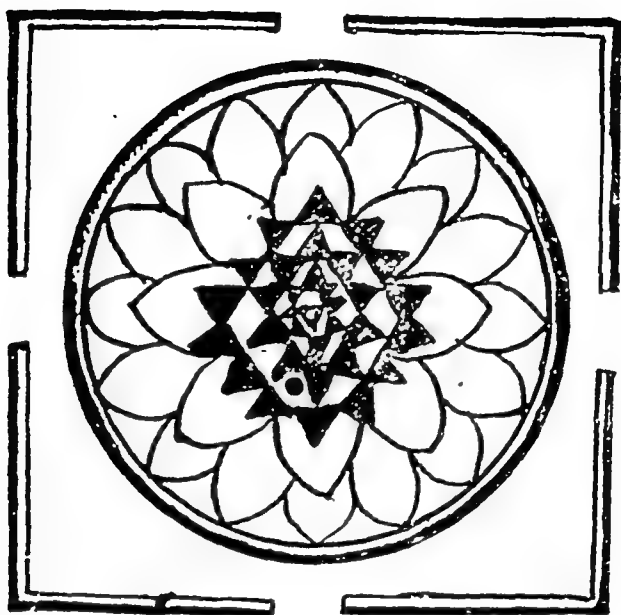
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सबको मुग्ध करने की शक्ति एवं सर्वतोमुखी अभ्युदय शक्ति

श्लोक सं० ३२

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सभी विज्ञानों का ज्ञान और व्यापार में सफलता।

श्लोक स० ३३
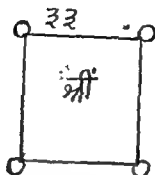
४५ दिना तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—धनराशि में वृद्धि

श्लोक सं० ३४
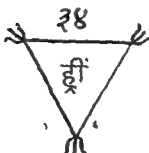
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—प्रज्ञाशक्ति में वृद्धि

श्लोक सं० ३५
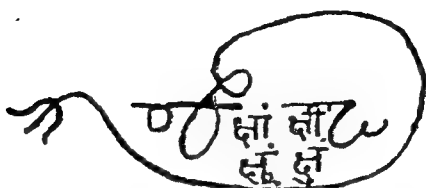
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें ।

यन्त्र के लिए पदार्थ - सुवर्णधातु

लाभप्रद फल — क्षीण करने वाली बिमारियों से छुटकारा

श्लोक सं० ३६

३६
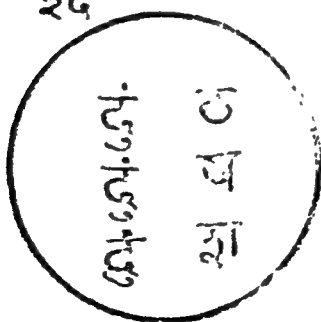
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें ।

यन्त्र के लिए पदार्थ — सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल — सभी आपत्तियों का आहरण

श्लोक सं० ३७

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—अशुभ प्रभाव डालने वाले व्यक्तियों या वस्तुओं से रक्षा।

श्लोक सं० ३८
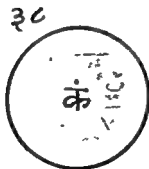
४५ दिनों तक प्रतिदिन ५००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—बाल्यकाल में आपत्तियों से परिहरण

श्लोक सं० ३९
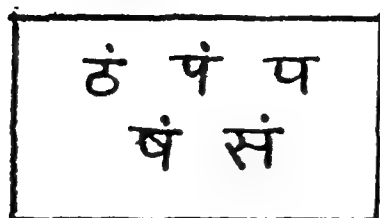
१२ दिनों तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—दुःस्वप्नों का निवारण

श्लोक सं० ४०
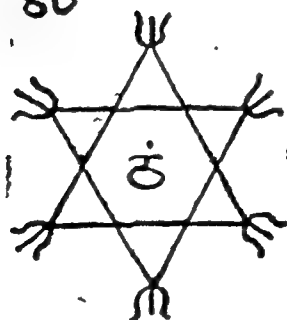
२५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने का पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—स्वप्न में ऐच्छिक अवलोकशक्ति
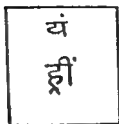
श्लोक सं० ४१

३० दिनो तक प्रतिदिन ४००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—उदर रोग से छुटकारा

श्लोक सं० ४२
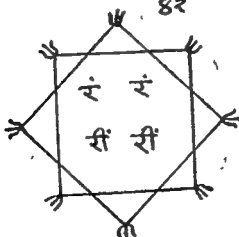
४५ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—जलोदर रोग की सफल चिकित्सा।

श्लोक सं० ४३
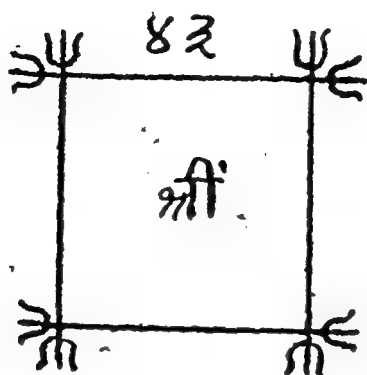
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सबको मुग्ध करने की शक्ति और सभी
कार्यों में विजय की प्राप्ति।

श्लोक सं० ४४
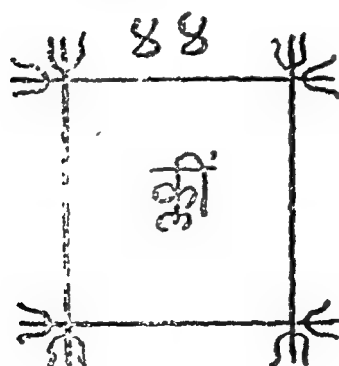
१२ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सभी रोगों से छुटकारा।
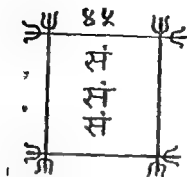
श्लोक स० ४५

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—वाग्वैभव

श्लोक सं० ४६

४६

ह्रीं
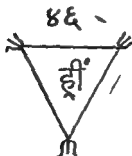
४५ दिनों तक प्रतिदिन १५०० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु।
लाभप्रद फल—पति से मिलन और सन्तानोत्पत्ति।

श्लोक सं० ४७
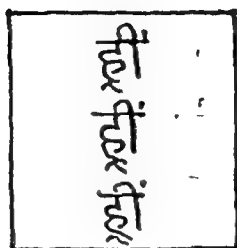
२५ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—देवताओं और पुरुषों को आकर्षित करने की शक्ति।

श्लोक सं० ४८

९ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—ग्रहों के अशुभ प्रभाव को शान्त करने की शक्ति।
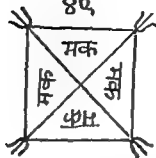
१० दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—हल्दी, मन्त्र के उच्चारण के बाद, तेल में मिलाकर और हरे रङ्ग की आंखों वाले लड़के की हथेली पर रखकर आग में छिड़कें।
लाभप्रद फल—छुपे हुए खजाने का पता लगना।
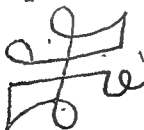
श्लोक सं० ५०

५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने का पदार्थ—सुवर्ण या जल
लाभप्रद फल—शरीर में दाना निकलने के रोग से छुटकारा।

श्लोक सं० ५१
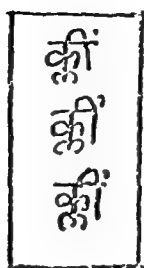
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने का पदार्थ— सुवर्ण धातु या चन्दन का लेप
लाभप्रद फल—मोहनिद्रा उत्पन्न करने की शक्ति

श्लोक सं० ५२
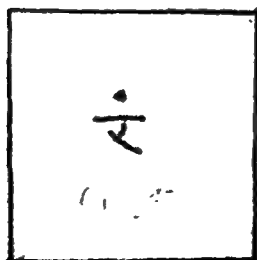
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने का पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—नेत्र और कान सम्बन्धी सब रोगों की सफल चिकित्सा।

श्लोक सं० ५३

४५ दिना तक प्रतिदि १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु और उसे
दीपक के नीचे रखना।
लाभप्रद फल—सब कार्यों म ऽफलता।
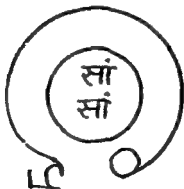
श्लोक सं० ५४

४५ दिना तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—स्त्री रोगों की सफल चिकित्सा।
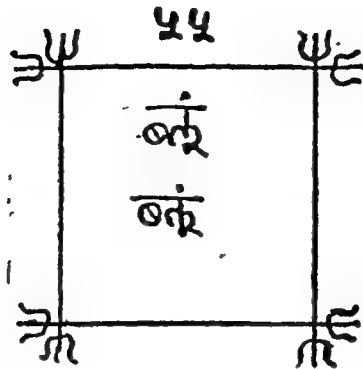
श्लोक सं० ५५

४५ दिनों तक प्रतिदिन २५०० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ = सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल — शत्रुओं का नाश।

श्लोक सं० ५६
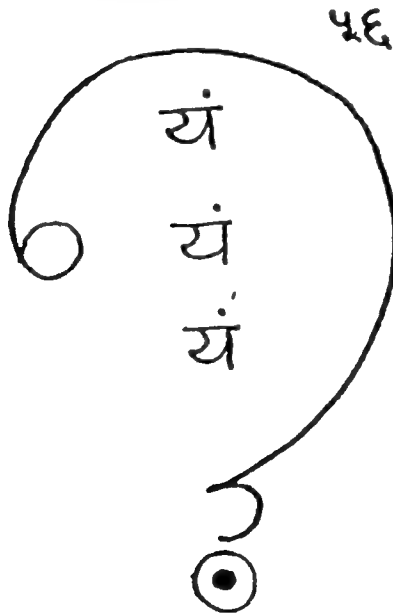
४५ दिनों तक प्रतिदिन २०,००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ — सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल — रुकावटों से छुटकारा।

इलोक सं० ५७
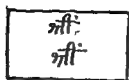
६ दिनों तक प्रतिदिन २५ ००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सर्वोदय की प्राप्ति।

इलोक सं० ५८

४५ दिनों तक प्रतिदिन ५००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—केसर चूर्ण
लाभप्रद फल—सबको मुग्ध करने की शक्ति और सब रोगों से छुटकारा पाना।

श्लोक सं० ६३
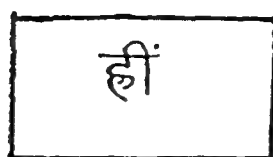
३० दिनों तक प्रतिदिन ३०,००० बार इसका जाप करें ।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ— सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल— वशीकरण की शक्ति आना ।

श्लोक सं० ६४
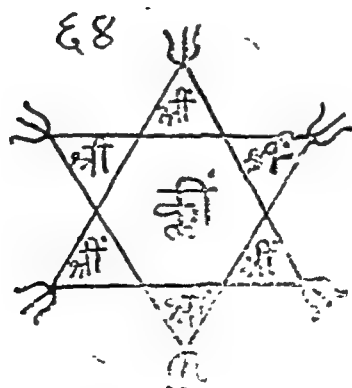
१८ दिनों तक प्रतिदिन २५,००० बार इसका जाप करें ।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ— केसर चूर्ण

लाभप्रद फल— वशीकरण की शक्ति आना ।

श्लोक सं० ६५

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सब तरफ से विजय प्राप्त होना।

श्लोक सं० ६६

६६

श्रीं
श्रीं
श्रीं
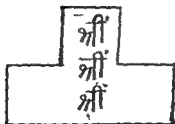
३ दिनों तक प्रतिदिन ५००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—संगीत में दक्षता।

श्लोक सं० ६७
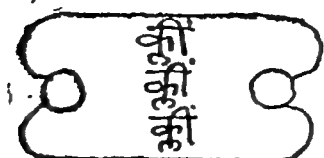
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ – सुवर्णधातु

लाभप्रद फल—विवाहित स्त्री और पुरुष में अत्यधिक प्रेम की वृद्धि होना।
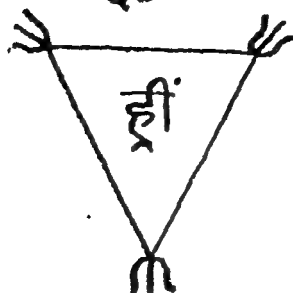
श्लोक सं० ६८

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—केसर चूर्ण

लाभप्रद फल—आगतों को मुग्ध करने की शक्ति।

श्लोक स० ६९

४५ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होना।

श्लोक स० ७०

४५ दिनो तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिये पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—पुरुषों को जीतने की शक्ति।

श्लोक सं० ७१

४५ दिनों तक प्रतिदिन १२,००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—स्त्री सखियों को जीतने की शक्ति।

श्लोक सं० ७२
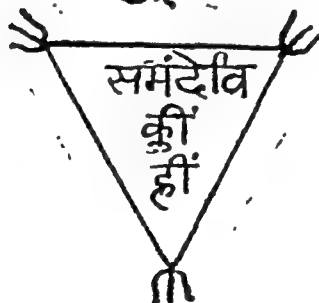
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—निडर और अनुविघ्न रहित यात्रा।

श्लोक सं० ७३

८ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—माताओं के दूध में वृद्धि।

श्लोक सं० ७४

३ दिनों तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—यशप्राप्ति।
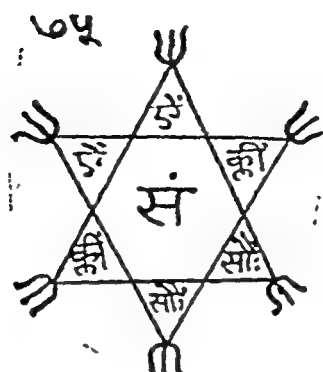
श्लोक सं० ७५

३ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल— काव्यात्मक दक्षता।

श्लोक सं० ७६
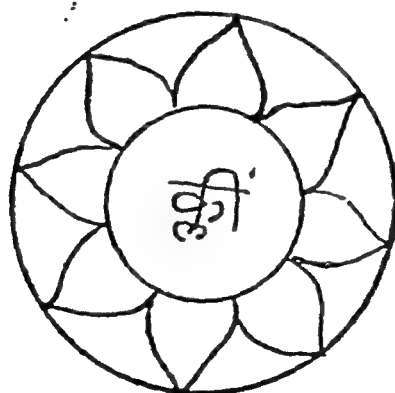
८ दिनों तक प्रतिदिन १२,००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिये पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सबको मुग्ध करने की शक्ति और
आरम्भ किए गए कार्यों में विजय की प्राप्ति।

श्लोक सं० ७७

१५ दिनों तक प्रतिदिन २००० बार इसका जाप करें
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—पैसे मे वृद्धि।

श्लोक सं० ७८
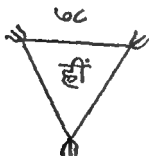
४५ दिनों तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—चन्दन लेप
लाभप्रद फल—आरम्भ किए गए कार्यों मे सफलता।

श्लोक सं० ७९
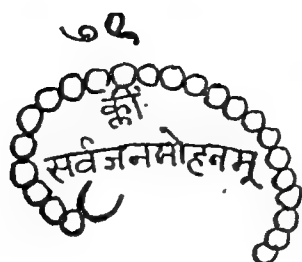
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सर्वजनमोहनशक्ति प्राप्त करना।

श्लोक सं० ८०
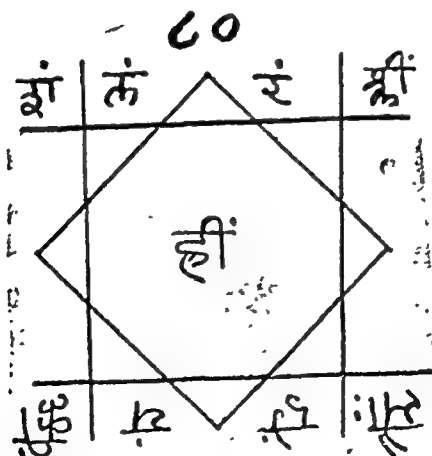
४८ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—ऐन्द्रजालिक शक्ति प्राप्त करना।

श्लोक सं० ८१
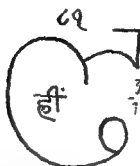
१६ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—आग पर काबू पाना।

श्लोक सं० ८२

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—भोजपत्र और उसे जूते से मलिन करना।

लाभप्रद फल—जल पर काबू पाना।

श्लोक सं० ८३
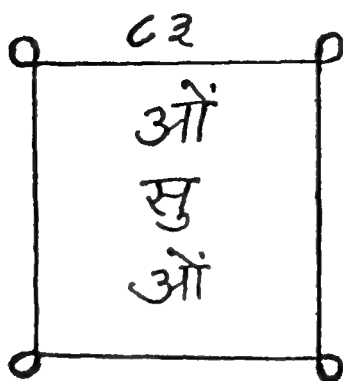
१२ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—हाथियों, घोड़ों और सेनाओं पर काबू पाना।
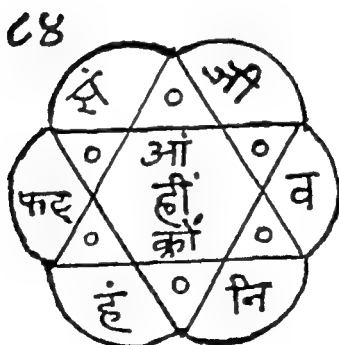
श्लोक सं० ८४

१ वर्ष तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—दूसरों के शरीरों में प्रवेश करने की शक्ति पाना।

श्लोक स० ८५

८५

रं रं
रं रं
रं रं
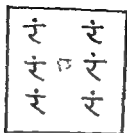
१२ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—भूतों पिशाचों को भगाने की शक्ति आना।

श्लोक सं० ८६
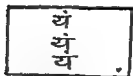
२१ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—अशुभ आपत्तियों के निवारण की शक्ति।

श्लोक सं० ८७
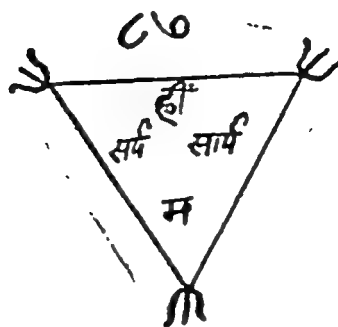
१६ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सर्पों पर काबू पाना।

श्लोक सं० ८८
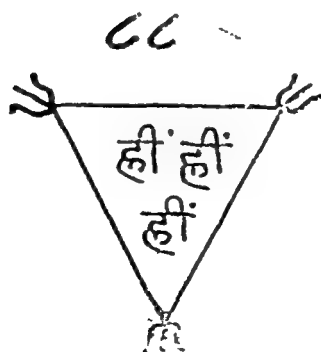
१५ दिनों तक प्रतिदिन १००० वार इसका जाप करें।

यन्त्र वनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—पशुओं पर काबू पाना।

श्लोक सं० ८९

३० दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सभी रोगों से छुटकारा पाना।

श्लोक सं० ९०
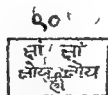
३० दिनों तक इसका १००० बार जाप करें

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—कुत्सित कार्यों के विरोध की शक्ति।

श्लोक सं० ९१

२५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—जमीन, जायदाद और धन की प्राप्ति।

श्लोक सं० ९२
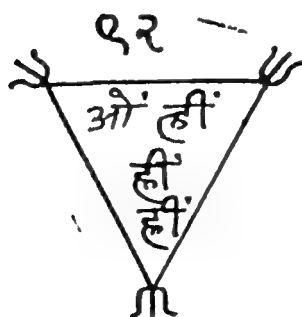
३० दिनों तक प्रतिदिन ४००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—राजाओं पर अधिकार करने की शक्ति।

श्लोक नं० ९३

२५ दिनों तक प्रतिदिन २००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सब इच्छाओं की पूर्ति।

श्लोक सं० ९४
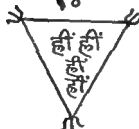
४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—पार्थिव वस्तुओं की प्राप्ति।

श्लोक सं० ९५

४५ दिनों तक प्रतिदिन १०८ बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—सभी घावों को भरने की शक्ति पाना।

श्लोक सं० ९६

४५ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—कलाओं का ज्ञान।

श्लोक स० ९७
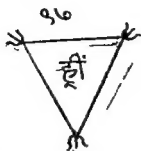
८ दिनो तक प्रतिदिन १०० बार इसका जाप करे।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु
लाभप्रद फल—बलवान शरीर होना।

श्लोक स० ९८
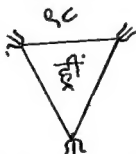
३० दिना तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।
यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवण धातु
लाभप्रद फल—यौन सम्बन्धी प्रसन्नता।

श्लोक सं० ९९
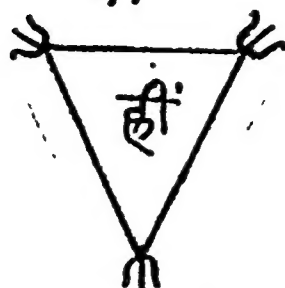
१६ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—वीरता आना

श्लोक सं० १००

१६ दिनों तक प्रतिदिन १००० बार इसका जाप करें।

यन्त्र बनाने के लिए पदार्थ—सुवर्ण धातु

लाभप्रद फल—सभी आदर्शों की प्राप्ति।

श्लोकानुक्रमणी